अम्न और जंग में इस्लाम के बुनियादी उसूल

डॉ॰ मुस्तफ़ा सिबाई

विषय-सूची

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।"

लेखक परिचय

डॉ॰ मुस्तफ़ा सिबाई इल्मी व तहरीकी हलक़ों में परिचय के मुहताज नहीं हैं। वे अल-इख़वानुल-मुसलिमून के अमीर रहे हैं। वे अपने समय के एक महान इस्लामी विचारक, साहित्यकार, कवि और पत्रकार थे।

डॉ॰ मुस्तफ़ा-बिन-हसनी अल-सबाई का जन्म सीरिया के मशहूर शहर हिम्स में 1915 ई॰ में हुआ। 1933 ई॰ में उच्च शिक्षा के लिए मिस्र गए और वहीं तहरीक से जुड़ गए। 1941 में ब्रिटिश साम्राज्य के ख़िलाफ़ प्रदर्शन के दौरान अपने छात्र साथियों के साथ पहली बार गिरफ़्तार हुए।

डॉ॰ सिबाई उन्हीं दिनों हसनुल-बन्ना (रह॰) के सम्पर्क में आए। सीरिया वापस आकर वे इस्लाम के प्रचार-प्रसार में लग गए। उन्होंने सीरिया में दावती क़ाम करनेवाले सभी उलमा और इस्लामी सोसाइटियों के साथ मीटिंग की। 1942 ई॰ में उन्हीं के नेतृत्व में सीरिया में 'अल-इख़वानुल-मुसलिमून' की स्थापना हुई।

डॉ॰ सिबाई ने दो दर्जन से अधिक किताबें लिखी हैं। उनकी किताबों का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में हो चुका है। उनकी किताबें तहरीकी हलक़ों में बहुत लोकप्रिय हैं।

डॉ॰ सिबाई शुरू से ही राजनीति में सक्रिय थे। 1949 ई॰ में सीरियाई संसद के संस्थापक कमेटी के सदस्य चुने गए। फिर डिप्टी स्पीकर चुने गए। वे सीरिया के संविधान निर्मात्री कमेटी के सदस्य भी चुने गए। उन्होंने ही 1955 ई॰ में दिमश्क़ विश्वविद्यालय में 'कुल्लिय्यतुश्शरीआ' नाम से एक नए विभाग की बुनियाद डाली और उसके पहले डीन नियुक्त हुए।

आख़िरी उम्र में डॉ॰ मुस्तफ़ा सिबाई पर फ़ालिज का दौरा पड़ा। इसी हाल में वे लगभग 8 साल तक रहे और 3 अक्तूबर 1964 ई॰ को उनका इन्तिक़ाल हो गया।

अम्न व शान्ति की बुनियादें

(1) सारे इनसान आपस में भाई-भाई हैं, यद्यपि उनकी भाषाएँ, उनके नाम, उनकी जातियाँ और उनके देश अलग-अलग हैं। सारे इनसान एक ही माँ-बाप की औलाद हैं, जैसा कि अल्लाह तआला ने फ़रमाया है—

"ऐ लोगो! अपने उस रब से डरो, जिसने तुमको एक जान से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा बनाया और उन दोनों से बहुत-से मर्द और औरतें दुनिया में फैला दिए।"
(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-1)

क़ुरआन में इनसानों को ज़्यादातर जगहों पर 'अन-नास' (यानी लोगो) कहकर सम्बोधित किया गया है, लेकिन उन्हें 'आदम' की औलाद कहकर भी पुकारा गया है। मिसाल के तौर पर—

"ऐ आदम की औलाद! हमने तुम्हारे लिए वस्त्र (लिबास) उतारा है।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-26)

एक दूसरी जगह कहा गया है—

"ऐ आदम की औलाद! कहीं शैतान तुम्हें बहकावे में न डाल दे।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-27)

इन आयतों में लोगों के बीच अपनापन और भाईचारे की बात कही गई है, ताकि हर इनसान एक-दूसरे के साथ ज़ुल्म व ज़्यादती करने से बचे।

इनसान तो इनसान, पशुओं के साथ भी किसी प्रकार का ज़ुल्म व ज़्यादती न करनी चाहिए, क्योंकि दोनों एक ही दुनिया के रहनेवाले हैं। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"धरती पर चलने-फिरनेवाला कोई भी जानदार हो या अपने दो परों से उड़नेवाला कोई पक्षी, ये सब तुम्हारी ही तरह की उम्मतें (गरोह) हैं।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-38)

बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, धरती और आकाश, सब उसी एक अल्लाह के पैदा किए हुए हैं और वही एक अल्लाह सबका पालन-पोषण करता है। हर ईमानवाले की यह ज़िम्मेदारी है कि वह प्रत्येक दिन अपनी नमाज़ में तीस से अधिक बार इस सच्चाई को बयान करे और यह बयान और इज़हार क़ुरआन की सूरा-1 फ़ातिहा पढ़ते समय अपनी नमाज़ की हर रकअत में करेगा। सबसे पहले वह कहता है, "अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील और दयावान है", फिर कहता है, "प्रशंसा और शुक्र अल्लाह ही के लिए है जो सारे जहानों का रब (प्रभु, पालनकर्ता) है।" (क़ुरआन, सूरा-1 फ़ातिहा, आयत-1) यह आयत साफ़ तौर से बताती है कि हमारी इस दुनिया के अलावा और भी दुनियाएँ हैं और अल्लाह उन सबका रब है।

(2) इसी तरह सारे इनसानों के बीच प्रेम, सहयोग और अपनेपन की भावना उस ईमान की बुनियाद है जो अल्लाह के यहाँ मक़बूल (स्वीकार्य) है। उसी मक़बूल ईमान की बुनियाद पर अल्लाह के नज़दीक लोगों के बीच एक-दूसरे पर श्रेष्ठता हासिल होगी। अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"तुममें से कोई ईमानवाला न होगा जब तक कि अपने (इनसानी) भाई के लिए वही पसन्द न करे जो अपने लिए पसन्द करता है।"
(हदीस : मुस्लिम)

अल्लाह तआला का फ़रमान भी है—

"तुम भलाई और तक़वा (ईशपरायणता) के कामों में सहयोग करो और गुनाह और ज़्यादती के कामों में सहयोग न करो।"
(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-2)

एक बार पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"सारी मख़लूक़ (सृष्टि) अल्लाह का कुंबा (कुटुम्ब) है। उसके नज़दीक सबसे ज़्यादा प्रिय वह है जो उसके कुंबे के लिए ज़्यादा फ़ायदेमन्द हो।"
(हदीस : बैहक़ी)

हरेक जानदार पर रहम करना और उसके दुख-सुख की चिन्ता करना

एक ऐसी महान इबादत है जो लोगों के लिए जन्नत में दाख़िले का सबब बन सकती है। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"एक व्यक्ति ने एक कुत्ते को देखा कि वह जीभ निकाले हाँप रहा है और प्यास की ज़्यादती से मिट्टी कुरेदकर खा रहा है। यह देखकर वह अपने चमड़े के मोज़े में कुएँ से पानी निकालकर उसे पिलाने लगा। यहाँ तक कि उसने उसकी प्यास बुझा दी। फिर उसने अपने इस अच्छे काम पर अल्लाह का शुक्र अदा किया तो अल्लाह ने उसे जन्नत में दाख़िल कर दिया।"

पैग़म्बर (सल्ल॰) के साथियों (सहाबियों) (रज़ि॰) ने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या जानवरों के काम आने में हमारे लिए अज्र (अच्छा बदला) है?" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "हर नर्म जिगर में अज्र है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इसका मतलब यह है कि हर जानदार पर रहम करने में अज्र व सवाब (इनाम) है।

ज़मीन पर बसनेवाले जानदारों और बेजान चीज़ों पर रहम करना अल्लाह की रहमत और उसके यहाँ अज्र व सवाब हासिल करने का ज़रिआ है। इसलिए अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"रहम करनेवालों पर रहमान (दयावान, ख़ुदा) रहम करेगा। तुम ज़मीनवालों पर रहम करो तो आसमानवाला तुमपर रहम करेगा।"
(हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी)

प्रेम, दया और आपसी सहयोग ही वे बुनियादें हैं, जिनकी बुनियाद पर लोग आपस में एक-दूसरे से मामला करते हैं और उसी के आधार पर उनका ईमान पूरा होगा और उन्हें आसमान की बादशाहत मिलेगी, यानी वे जन्नत में दाख़िल होंगे। इसी प्रेम और आपसी सहयोग की भावना को परवान चढ़ाने के लिए इस्लाम ने लोगों को सलाम को आम करने की ताकीद की है। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"तुम लोग जन्नत में दाख़िल नहीं होगे जब तक ईमानवाले न

बनो और तुम लोग ईमानवाले नहीं हो सकते जब तक कि आपस में मुहब्बत न करो, क्या मैं तुम्हें वह चीज़ न बताऊँ जिस पर अमल करने से आपस में मुहब्बत पैदा होती है? अपने बीच सलाम को फैलाओ।"

(हदीस : मुस्लिम)

(3) समाज के लोगों के हक़ और अधिकार अदा करने के सिलसिले में माफ़ कर देना, दरगुज़र से काम लेना, उदार रवैया अपनाना और लोगों की बदसुलूकी का बदला एहसान और अच्छे सुलूक से देना बुलन्द और अच्छे अख़लाक़ में से है। यही वह मैदान है जिसमें लोग अल्लाह की ख़ुशनूदी हासिल करने और जन्नत में प्रवेश पाने के लिए एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने की कोशिश करते हैं। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"बुराई का बदला वैसे ही बुराई है, लेकिन जो कोई माफ़ कर दे और सुधार कर ले तो उसका बदला अल्लाह के ज़िम्मे है। अल्लाह ज़ालिमों को पसन्द नहीं करता।"

(क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयत-40)

इसी तरह एक दूसरी जगह अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"और ऐ नबी! भलाई और बुराई समान नहीं है। तुम बुराई को उस नेकी से दूर करो जो बेहतरीन हो। तुम देखोगे कि वही व्यक्ति, जिससे तुम्हारी दुश्मनी थी, वह जिगरी दोस्त बन गया है। किन्तु यह चीज़ केवल उन लोगों को हासिल होती है जो सब्र (धैर्य) से काम लेते हैं और यह मक़ाम उन्हीं लोगों को हासिल होता है जो बड़े नसीबवाले होते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-41 हा-मीम-सजदा, आयतें-34, 35)

और अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"बन्दा अपने अच्छे अख़लाक़ के ज़रिए से आख़िरत में बड़ा दर्जा और ऊँचा मक़ाम हासिल कर लेगा चाहे वह इबादत में कमज़ोर ही क्यों न हो।"

(हदीस : तबरानी)

(4) हर वह काम जिसकी वजह से सीनों में आग भड़कती है या लोगों

के बीच दुश्मनी और नफ़रत पैदा होती है, उनका करना किसी ईमानवाले (मुसलमान) के लिए जाइज़ नहीं है जैसे ग़ीबत, चुग़ली, टोह, मज़ाक़ उड़ाना, और बदगुमानी आदि। क़ुरआन में है—

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! न मर्द दूसरे मर्दों की हँसी उड़ाएँ, मुमकिन है वे उनसे अच्छे हों और न औरतें दूसरी औरतों की हँसी उड़ाएँ, मुमकिन है वे उनसे अच्छी हों। आपस में एक-दूसरे पर ताने न कसो और न एक-दूसरे को बुरे नामों से पुकारो। ईमान लाने के बाद तो फ़िस्क़ (अवज्ञा) का नाम भी बुरा है और जो लोग इस रवैए से तौबा न करें, तो यही लोग ज़ालिम हैं।"

ऐ ईमान लानेवालो! बहुत ज़्यादा गुमान करने से बचो क्योंकि कुछेक गुमान गुनाह होते हैं और टोह में न लगो, और न एक-दूसरे की ग़ीबत (पीठ-पीछे निन्दा) करो। क्या तुममें से कोई इसको पसन्द करेगा कि वह अपने मरे हुए भाई का माँस खाए? वह तो तुम्हें अप्रिय होगा ही और अल्लाह से डरो, बेशक अल्लाह तौबा क़बूल करनेवाला, मेहरबान है।"

(क़ुरआन, सूरा-49 हुजरात, आयतें-11,12)

(5) सभी आसमानी दीन अपने उसूलों एवं उद्देश्यों में समान हैं और तमाम पैग़म्बर (रसूल) और नबी आपस में भाई हैं। सभी ने एक-दूसरे के बाद लोगों तक अल्लाह का सन्देश पहुँचाया। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"मुहम्मद तो बस एक रसूल (पैग़म्बर) हैं। उनसे पहले भी और रसूल गुज़र चुके हैं।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले इमरान, आयत-144)

इसलिए दीन की संख्या को लेकर लोगों के बीच लड़ाई-झगड़ा और लूटमार नहीं होना चाहिए।

अल्लाह फ़रमाता है—

"मुसलमानो! कहो, हम ईमान लाए अल्लाह पर और उस हिदायत पर जो हमारी तरफ़ उतारी गई है और जो इबराहीम और इसमाईल और इसहाक़ और याक़ूब और उनकी औलाद पर

उतारी गई थी और जो मूसा और ईसा और दूसरे पैग़म्बरों को उनके रब की तरफ़ से दी गई थी। हम उनमें से किसी के बीच अन्तर नहीं करते और हम केवल उसी अल्लाह के आज्ञाकारी (मुस्लिम) हैं। (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-136)

इस तरह इस्लाम ने लोगों के दिलों में अम्न व शान्ति के पैग़ाम को बिठाया है और इस दावत की बुनियाद अच्छे अख़लाक़ और रवादारी पर रखी है।

लेकिन इस्लाम की नज़र में केवल अम्न की दावत देने से अम्न क़ायम नहीं होगा। इस्लाम की नज़र में अम्न क़ायम करने के लिए लोगों और जमाअतों का प्रशिक्षण और उनके लिए उसूलों की पाबन्दी बेहद ज़रूरी है। इस तरह लोगों के दिलों में अम्न व शान्ति की अहमियत उजागर होगी और उनके अख़लाक़ व चाल-चलन में अम्न का जज़बा (भावना) इस तरह रच-बस जाएगा जैसे उनकी रगों में ख़ून दौड़ता है। और समाज में फ़ितना व फ़साद और शान्ति भंग होने की सभी संभावनाएँ ख़त्म हो जाएँगी और न्याय व इनसाफ़ की बुनियाद पर एक ऐसी सामूहिक व्यवस्था क़ायम होगी जिसमें अधिकारों एवं कर्तव्यों के बीच पूर्ण संतुलन होगा। इस व्यवस्था में न किसी पर ज़ुल्म होगा और न किसी का हक़ और अधिकार मारा जाएगा।

शान्ति क़ायम करने के अन्दरूनी उपाय

इस्लाम सबसे पहले किसी इनसान के नफ़्स (मन) की इस्लाह करता है, ताकि वह अल्लाह के आदेशों की पैरवी में हर वक़्त लगा रहे और लोगों से बेलौस (निस्सवार्थ) मुहब्बत करे, उनके दुख-सुख में शरीक रहे। रूचि हो या न हो, हर हाल में भलाई का काम करे और अपनी ख़ुशी और नाराज़गी के मौक़े पर किसी को तकलीफ़ पहुँचाने से दूर रहे। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"अपने रब की बन्दगी करो और नेक काम करो, इसी से उम्मीद की जा सकती है कि तुम्हें कामयाबी हासिल हो।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-77)

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"सही अर्थों में मुसलमान वह है जिसके हाथ और ज़ुबान से मुसलमान महफ़ूज़ रहें।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक दूसरी हदीस में फ़रमाया—

"वह ईमानवाला नहीं हो सकता जिसका पड़ोसी उसकी बुराई से महफ़ूज़ न रहे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अहमद)

एक और हदीस में फ़रमाया—

"सच्चा मोमिन वह है, जिससे लोग अपनी जान व माल के सिलसिले में महफ़ूज़ (सुरक्षित) हैं।" (हदीस : इब्ने-माजा)

इस्लाम मुहब्बत और भाईचारे की बुनियाद पर एक ऐसी पारिवारिक व्यवस्था क़ायम करता है जिससे इनसानी नफ़्स को सुकून मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने-आपको दूसरे से सुरक्षित समझता है। आपसी खींच-तान और वाद-विवाद का कोई अंश नहीं पाया जाता। एक-दूसरे के बीच अधिकारों का ऐसा बेमिसाल संतुलन होता है कि न बड़ा छोटे पर ज़ुल्म करता है और न

छोटा सरक़शी पर उतारू नज़र आता है। इस पारिवारिक व्यवस्था में न पति मनमानी करता है, न पत्नी को कमतर और तुच्छ समझा जाता है। न बाप बेटे से बेपरवाह होता है और न बेटा बाप से बदसुलूकी और नाफ़रमानी करता है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"और दुनिया में उनके (माँ-बाप के) साथ नेक बरताव कर।"
(क़ुरआन, सूरा-31 लुक़मान, आयत-15)

अल्लाह ने बाल-बच्चों के बारे में कहा—

"बचाओ अपने-आपको और अपने बाल-बच्चों को (जहन्नम की) आग से।" (क़ुरआन, सूरा-66 तहरीम, आयत-6)

इसी तरह पति-पत्नी के अधिकारों के सिलसिले में अल्लाह ने कहा—

"क़ानून के मुताबिक़ औरतों के भी वैसे ही अधिकार हैं, जैसे मर्दों के अधिकार उनपर हैं। अलबत्ता मर्दों को उनपर एक विशेष दर्जा प्राप्त है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-228)

इसके अलावा इस्लाम समाज की बुनियाद इल्म (ज्ञान) पर रखता है। ऐसा इल्म जिससे अक़्लवालों को रौशनी मिलती है। इस्लाम इल्म हासिल करने को समाज के एक-एक व्यक्ति के लिए अनिवार्य क़रार देता है। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"इल्म का हासिल करना प्रत्येक मुसलमान पर फ़र्ज़ है।"
(हदीस : इब्ने-माजा)

इसी तरह इस्लाम समाज के प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक गुणों से सुशोभित देखना चाहता है ताकि मान-सम्मान की हिफ़ाज़त हो सके और बेलगाम काम-इच्छा पर क़ाबू पाया जा सके। अल्लाह क़ुरआन में फ़रमाता है—

"ऐ नबी! ईमानवाले पुरुषों से कह दो कि अपनी निगाहें बचाकर रखें और अपनी शर्मगाहों (गुप्तांगों) की हिफ़ाज़त करें। यह उनके लिए ज़्यादा पाकीज़ा तरीक़ा है, जो कुछ वे करते हैं अल्लाह को

उसकी पूरी ख़बर है और ईमानवाली औरतों से कह दो के वे भी अपनी निगाहें बचाकर रखें और अपने शर्मगाहों (गुप्तांगों) की हिफ़ाज़त करें।" (क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयतें-30, 31)

इस्लाम सेहत की ऐसी व्यापक व्यवस्था क़ायम करता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ एवं जिस्मानी तौर पर मज़बूत रहे। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) फ़रमाते हैं–

"सफ़ाई और पाकी आधा ईमान है।" (हदीस : मुस्लिम)

इनसानी शरीर को चुस्त और दुरुस्त रखने के लिए पैग़म्बर (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"अपनी औलाद को तीर चलाना, तैराकी और घुड़सवारी करना सिखाओ।" (हदीस : मुस्लिम)

पैग़म्बर (सल्ल॰) ने शरीर को आराम और राहत पहुँचाने पर ज़ोर देते हुए कहा–

"तुम्हारे शरीर का तुमपर बड़ा हक़ है।"
(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक हदीस में पैग़म्बर (सल्ल॰) ने जिस्मानी ताक़त की अहमियत बताते हुए कहा–

"ताक़तवर मोमिन अल्लाह के नज़दीक कमज़ोर मोमिन से बेहतर और अधिक प्रिय है।"

इस्लाम समाज में इनसानियत के आदर पर ज़ोर देता है और सामूहिक न्याय-व्यवस्था को व्यवहारिक रूप प्रदान करता है। अल्लाह तआला क़ुरआन में फ़रमाता है–

"हमने आदम की औलाद को श्रेष्ठता और बड़ाई प्रदान की।"
(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-70)

यहाँ इनसानियत के आदर और एहतिराम का मतलब यह है कि यहाँ हरेक आदमी के लिए ज़िन्दा रहने के हक़ की ज़मानत दी गई है। अल्लाह

तआला फ़रमाता है—

"जिस जान को अल्लाह ने हराम ठहराया है उसको क़त्ल न करो (यह और बात है कि) हक़ (न्याय) का तक़ाज़ा यही हो।"

(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-33)

रोज़ी हासिल करने के लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति को काम करने का हक़ हासिल है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का फ़रमान है—

"बेहतरीन कमाई आदमी का अपने हाथ से कमाना है।"

(हदीस : बुख़ारी, इब्ने-माजा)

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसी सम्मानजनक ज़िन्दगी गुज़ारने का हक़ है जिसमें उसके लिए मुनासिब पोशाक, भरपेट खाना और रहने के लिए मकान हासिल हो और उसको उसकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार मान-सम्मान भी मिले। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"नातेदार को उसका हक़ दो और मिसकीन (मुहताज) और मुसाफ़िर को उसका हक़ दो।"

(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-26)

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) फ़रमाते हैं—

"जो व्यक्ति पेट-भर खाना खाकर सोए और उसका पड़ोसी उसके पहलू में भूखा रहे, और वह (इस बात को) जानता हो, तो वह ईमानवाला नहीं।" (हदीस : अल-बज़्ज़ार, तबरानी, अलबानी)

एक दूसरी हदीस में नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"जिसका भाई उसके अधीन (मातहत) हो, तो उसको वही खिलाए जो ख़ुद खाए और उसे वही पहनाए जो ख़ुद पहने।"

(हदीस : बुख़ारी)

एक हदीस में नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"जो हमारे किसी काम पर (किसी ज़िम्मेदाराना पद पर) बिठाया जाए और उसकी बीवी न हो तो वह अपने लिए बीवी की

व्यवस्था कर ले या उसके लिए सवारी न हो तो सवारी की व्यवस्था कर ले या घर न हो तो अपने लिए एक घर बना ले।"

(हदीस : तबरानी)

इस्लाम इनसानी समाज के अन्दर ऐसे क़ानून बनाता है जिससे लोगों के बीच अद्ल व इनसाफ़ क़ायम हो। उनके बीच अधिकारों एवं कर्तव्यों में संतुलन बना रहे और बड़ाई और श्रेष्ठता का पैमाना तो केवल तक़वा (ईशपरायणता) है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"वास्तव में अल्लाह के नज़दीक तुममें सबसे ज़्यादा इज़्ज़तवाला वह है जो तुम्हारे अन्दर सबसे ज़्यादा परहेज़गार है।"

(क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-13)

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"लोग आपस में कंघी के दानों की तरह बराबर हैं। किसी अरबी को किसी अजमी पर कोई श्रेष्ठता नहीं है, मगर तक़वा की बुनियाद पर। उसी तरह किसी गोरे को किसी काले पर कोई श्रेष्ठता नहीं है, सिवाय तक़वा के।"

(हदीस : बैहक़ी-5137, कामिल फ़िज़्ज़ुअफ़ा)

इस्लाम एक ऐसी हुकूमत क़ायम करता है जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति की सेवा करती हो, लोगों की रहनुमाई करती हो और उनकी हर तरह की निगरानी करती हो।

हुकूमत के ख़िदमतगार होने का मतलब यह है कि वह क़ौम की सलाह पर काम करते हैं। क़ुरआन में अल्लाह कहता है—

"वे अपने मामले आपसी मश्वरों से चलाते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयत-38)

हुकूमत हमेशा जनता के हित में और उसके मान-सम्मान के लिए काम करती है। नबी (सल्ल॰) का कथन है—

"जिसने किसी गरोह में से किसी ख़ास व्यक्ति को हाकिम बनाया और उनमें ऐसा व्यक्ति मौजूद हो जो उसकी तुलना में अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा पसन्दीदा हो, तो उसने अल्लाह, उसके रसूल

और ईमानवालों की जमाअत के साथ ख़ियानत की।"

(हदीस : हाकिम)

एक दूसरी हदीस में नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"जो मुसलमानों के मामलों में से किसी मामले का ज़िम्मेदार बनाया गया तो अल्लाह तआला उसकी ज़रूरतों की चिन्ता (तब तक) नहीं करेगा जब तक वह लोगों की ज़रूरतों का ख़याल नहीं करेगा।" (हदीस : तबरानी)

यह बात कि हुकूमत की ज़िम्मेदारी मार्गदर्शन की भी है, तो इसमें शक नहीं कि एक इस्लामी हुकूमत की यह अहम ज़िम्मेदारी है कि रास्ते से भटके हुए लोगों को सही रास्ता दिखाए। गुमराह लोगों को सीधा रास्ता दिखाए और सोए हुए लोगों को जगाए और काम के लोगों को काम पर लगाए। जनता की भलाई और उसकी शान्ति एवं सुरक्षा की राह आसान करे।

पैग़म्बर (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"देश का शासक निगराँ है और उससे उसकी जनता के बारे में पूछा जाएगा।" (हदीस : बुख़ारी)

हुकूमत का काम लोगों के अधिकारों की हिफ़ाज़त करना है। इसका मतलब यह है कि जनता के जान व माल की हिफ़ाज़त करना हुकूमत की ज़िम्मेदारी है। समाज से ज़ुल्म व अत्याचार को ख़त्म करना उसका संवैधानिक कर्तव्य है। नातेदारों से अच्छा सुलूक न करना और पड़ोसियों को तंग करना भी ज़ुल्म है। अधिकारों के हनन और उनसे वंचित रहने की वजह से ही लोगों में दुश्मनी पैदा होती है और अन्ततः बात क़त्ल और ख़ून-ख़राबे तक जा पहुँचती है। ऐसे हालात में सत्ता की ताक़त की सख़्त ज़रूरत पड़ती है। हज़रत उसमान (रज़ि॰) का कथन है–

"अल्लाह तआला सत्ता की ताक़त से वह रुकावट दूर कर देता है जो वह क़ुरआन के ज़रिए से नहीं करता है।"

इसी तरह हुकूमत की ज़िम्मेदारी यह भी है कि वह बाहर के दुश्मनों को जनता के अक़ीदे, उसका मान-सम्मान, और उसकी सरज़मीन पर हमले

की इज़ाज़त न दे और तमाम मुमकिन ज़रिओं से जनता की हिफ़ाज़त करे। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"तुम दुश्मनों के मुक़ाबले के लिए जितना हो सके ताक़त जमा करो।" (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-60)

इस तरह इस्लाम ने समाज के अन्दर अम्न व शान्ति स्थापित करने का काम किया है। उसने इनसानी नफ़्स को ऊँचे अख़लाक़ और लोगों के बीच आपसी सहयोग के लिए प्रशिक्षित करने का काम किया है। इस्लाम ने ऐसी चीज़ों पर रोक लगाई है, जिससे शान्ति भंग होने और सामूहिक व्यवस्था में बाधा पड़ने का ख़तरा हो। इस्लाम ऐसे तमाम मामलों पर रोक लगाता है, जिनसे लोगों के बीच दुश्मनी पैदा होने या एक-दूसरे के ख़िलाफ़ भावनाओं के भड़कने की आशंका हो।

सच्चाई यह है कि लोगों को लड़ाई-झगड़े से रोकने और हर तरह के फ़ितना-फ़साद से बचाकर समाज में अम्न व शान्ति का माहौल बनाने के लिए इस्लाम ही सही बुनियाद उपलब्ध कराता है।

जब लोगों का मन अपने अधिकारों के ताल्लुक़ से सन्तुष्ट होगा। भड़कानेवाली भावनाओं से दूर रहेगा तो लड़ाई-झगड़े भी नहीं होंगे और उसे ज़ुल्म व ज़्यादती में कभी मज़ा नहीं आएगा। लेकिन वे लोग जो ज़ुल्म की चक्की में पिस रहे होंगे, परेशानियों और बेचैनियों ने उनकी नींद उड़ा रखी होगी और जिनके पट्ठे जवाब दे रहे होंगे तो ऐसे माहौल में अम्न व अमान क़ायम नहीं रह सकता। ऐसे माहौल में जहाँ भावनाएँ भड़काई जा रही हों, काम-वासनाओं को उभारा जा रहा हो तो ऐसी हालत में लोग इनक़िलाब के आह्वान का स्वागत करते हैं और फ़ितना व फ़साद के लिए सोचते हैं। निस्सन्देह प्रत्येक युद्ध का ईंधन यही वंचित, भूखे, मज़लूम और पीड़ित लोग होते हैं और सारे इन्क़िलाब के पीछे इन्हीं लोगों का हाथ होता है।

इस्लाम एक ऐसा निज़ामे-अम्न (शान्ति-व्यवस्था) क़ायम करता है जो इनसानी समाज को जंग और फ़ितने-फ़साद से महफ़ूज़ रखता है। वह ऐसा कोई बिन्दू नहीं छोड़ता जिससे किसी बिगाड़ को जनता के अन्दर आने का

मौक़ा मिले और बुराई और बिगाड़ के लिए वह आमादा हो जाए, जिसके नतीजे में देश की शान्ति और अम्न-चैन बरबाद हो जाए।

फिर इस्लाम सकारात्मक बुनियादों पर निज़ामे-अम्न (शान्ति-व्यवस्था) क़ायम करता है। वह सिर्फ़ जंग के कारणों को ही ख़त्म नहीं करता है, बल्कि लोगों के सीनों में अम्न व शान्ति, प्यार व मुहब्बत का बीज भी बोता है। यहाँ तक कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति अम्न की लज़्ज़त को महसूस करने लगता है।

विदेशों में भी अम्न की दावत

एक अम्न-पसन्द गरोह तैयार करने के बाद इस्लाम ने देश की सीमा के बाहर भी अम्न क़ायम करने की दावत दी है, जिसकी निम्नलिखित बुनियादें हैं–

- दूसरी तमाम क़ौमों के साथ हमारे ताल्लुक़ात की पहली और अस्ल बुनियाद सुलह व सलामती है। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

  "ऐ ईमान लानेवालो! पूरे-पूरे अम्न में दाख़िल हो जाओ।"
  (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-208)

नोट : यहाँ विषय की मुनासबत से अरबी शब्द 'सिल्म' का अनुवाद 'अम्न' किया गया है। लेकिन आमतौर पर इस आयत का अनुवाद यह है, "पूरे-पूरे इस्लाम में दाखिल हो जाओ।"

- बाहरी दुनिया के साथ हमारी अम्न की पॉलिसी सकारात्मक बुनियादों पर होगी और यह पूरी तरह तामीरी होगी। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

  "नेकी करने और ईश-भय के काम में तुम एक-दूसरे का साथ दो।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-2)

  और दूसरी आयत में आया है–

  "अल्लाह तुम्हें इससे नहीं रोकता कि तुम उन लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करो और उनके साथ न्याय करो, जिन्होंने तुमसे धर्म के मामले में युद्ध नहीं किया, और न तुम्हें तुम्हारे अपने घरों से निकाला। निस्सन्देह अल्लाह न्याय करनेवालों को पसन्द करता है।" (क़ुरआन, सूरा-60 मुम्तहिना, आयत-8)

- बाहर की दुनिया के साथ आपसी सहयोग की एक ऐसी व्यापक संधि होगी, जिसके तहत दूसरी क़ौमों के अक़ीदे, उनकी आज़ादी और ख़ुद-मुख़्तारी (सम्प्रभुता) और उनकी धन-सम्पत्तियाँ, और उनके मान-सम्मान

का पूरा एहतिराम (आदर) किया जाएगा।

अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"दीन के मामले में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-256)

इसी तरह एक मौक़े पर हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि॰) ने मिस्र के गवर्नर हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) से फ़रमाया–

"तुमने कब से लोगों को ग़ुलाम बना लिया, उनकी माओं ने तो उन्हें आज़ाद पैदा किया था।"

एक दूसरी जगह क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"तुम लोग आपस में एक-दूसरे का माल नाजाइज़ तरीक़े से मत खाओ।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-188)

एक जगह और अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"हमने आदम की औलाद को इज़्ज़त व सम्मान दिया।"

(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-70)

- आख़िरी बात यह कि बाहर की दुनिया के साथ ऐसा शान्तिपूर्ण सहयोग का माहौल होगा कि दूसरी क़ौमों के पास जो इल्म व हिकमत और उद्योग धन्धे हैं उनसे फ़ायदा उठाने की पूरी गुंजाइश होगी। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"इसलिए ऐ नबी! ख़ुशख़बरी दे दो मेरे उन बन्दों को जो बात को ध्यान से सुनते हैं; फिर उसके बेहतरीन पहलू की पैरवी करते हैं। ये वे लोग हैं, जिन्हें अल्लाह ने हिदायत दी है और वही अक़्ल और समझवाले हैं।" (क़ुरआन, सूरा-39 ज़ुमर, आयतें-17, 18)

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने भी फ़रमाया है–

"विवेक और बुद्धि की बात ईमानवाले की खोई हुई सम्पत्ति है, जहाँ कहीं उसे पाता है, ले लेता है।"

(हदीस : इब्ने-हिब्बान, तिरमिज़ी, इब्ने-माजा)

आख़िरी पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने जब अपने समय के शासकों एवं अमीरों को ख़त भेजना चाहा तो आप (सल्ल॰) को बताया गया कि शासक बिना मुहर के ख़त क़बूल नहीं करते। अतः आप (सल्ल॰) ने मुहर बनाने का हुक्म दिया। यह मुहर आप (सल्ल॰) के लिए अगूँठी की शक्ल में बनाई गई। आप (सल्ल॰) ने उन ख़तों पर अगूँठी से मुहर लगाई।

उसी तरह अहज़ाब की जंग के मौक़े पर जब दुश्मनों की सेना ने मदीना को घेर लिया तो सलमान फ़ारिसी (रज़ि॰) ने अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को बताया कि हमारे यहाँ ईरान में लोग दुश्मनों के हमलों से बचने के लिए शहर के चारों तरफ़ खाई खोद लेते हैं। इसपर आप (सल्ल॰) ने मदीना के चारों तरफ़ खाई खोदने का आदेश जारी कर दिया और खुदाई में खुद भी शामिल रहे।

यह उस दीन का कारनामा है जो दूसरी क़ौमों के तजरिबों और ज्ञान से न केवल यह कि फ़ायदा उठाने की बुनियादें उपलब्ध कराता है, बल्कि देश की सीमा के बाहर के लोगों से ताल्लुक़ात में उस चीज़ को बहुत अहमियत देता है।

प्रिय पाठको! इस्लाम ने देश के भीतर और देश के बाहर जिस शान्ति-व्यवस्था को क़ायम करने की दावत दी है, उसके ये नुमायाँ पहलू हैं।

देश की आन्तरिक सुरक्षा

इसमें शक नहीं कि इस्लाम का जंगी निज़ाम जिस नज़रिए पर क़ायम है, यह बिलकुल वही नज़रिया है जिसकी बुनियाद पर दूसरे धर्मों ने जंग को अपने यहाँ बाक़ायदा एक प्रोग्राम की हैसियत से अपना लिया है। जंग की ज़रूरत उन लोगों के लिए होती है जिन्हें तरबियत (प्रशिक्षण) और क़ानून ज़ुल्म व ज़्यादती से बाज़ नहीं रख पाते और कुछ ऐसे गरोह भी हैं जो अपने पड़ोसी की कमज़ोरी के कारण, अपनी ताक़त और शक्ति के घमंड में ज़ोर ज़बरदस्ती का रवैया अपनाते हैं। ऐसी हालत में बिना किसी शक और शुब्हे के ताक़त का इस्तेमाल अम्न-पसन्दों के लिए क़ानून और शरीअत के मुताबिक़ जाइज़ हो जाता है। इसी वजह से इस्लाम ने भी ताक़त के इस्तेमाल को शर्तों से बाँध दिया है।

इस्लाम ने मुस्लिम समाज के कुछ गरोहों के ख़िलाफ़ सख़्ती बरतने और जंग करने का आदेश दिया है और वे ये हैं–

(1) नाफ़रमानों, सरकशों, डाकुओं और अम्न से खिलवाड़ करनेवालों से निपटने के लिए अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"जो लोग अल्लाह और उसके रसूल से बग़ावत करते हैं और देश में बिगाड़ पैदा करने के लिए सक्रिय रहते हैं, उनकी सज़ा तो बस यही है कि बुरी तरह क़त्ल किए जाएँ या सूली पर चढ़ाए जाएँ या उनके हाथ-पाँव विपरीत दिशाओं में काट डाले जाएँ या उन्हें मुल्क से निकाल दिया जाए।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-33)

(2) सरकशों और ज़ालिमों का ज़ोर तोड़ने के लिए अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"यदि ईमानवालों में से दो गरोह आपस में लड़ पड़ें तो उनके बीच सुलह करा दो। फिर यदि उनमें से एक गरोह दूसरे पर ज़्यादती

करे, तो जो गरोह ज़्यादती कर रहा हो उससे लड़ो, यहाँ तक कि वह अल्लाह के आदेश की ओर पलट आए।"

(क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-9)

(3) सूद (ब्याज) खानेवालों के बारे में, मज़दूरों और फ़क़ीरों का शोषण करनेवालों के बारे में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"ऐ ईमान लानेवालो! अल्लाह से डरो और जो कुछ तुम्हारा सूद (ब्याज) लोगों पर बाक़ी रह गया है उसे छोड़ दो, अगर तुम हक़ीक़त में ईमानवाले हो। लेकिन यदि तुमने ऐसा न किया तो अल्लाह और उसके रसूल से जंग के लिए ख़बरदार हो जाओ।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयतें-278, 279)

(4) ग़रीबों और संसाधनों से वंचित लोगों के हक़ छीननेवाले लोगों से अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"और उनके मालों में माँगनेवाले और ग़रीब का तयशुदा हक़ है (जो तुम्हें देना है।)।" (क़ुरआन, सूरा-51 ज़ारियात, आयत-19)

इसी लिए इस्लाम के पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) ने ज़कात देने से इनकार करनेवाले मुसलमानों से बाक़ायदा जंग की थी और उनका यह कथन मशहूर है, "ख़ुदा की क़सम! यदि उन्होंने मुझसे ऊँट की एक रस्सी भी रोक ली जो वे अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को देते थे तो मैं उनसे ज़रूर जंग करूँगा।"

(5) इनसान के बुनियादी अधिकार जैसे जान व माल, मान-सम्मान और इज़्ज़त व आबरू पर हाथ डालनेवालों और बिना किसी वजह के किसी की जान लेनेवालों के बारे में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"ऐ अक़्ल और समझवालो! तुम्हारे लिए क़िसास (जान के बदले जान) में ज़िन्दगी है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-179)

उसी तरह चोरी की सज़ा हाथ काटना है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"और चोर चाहे औरत हो या मर्द, दोनों के हाथ काट दो।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-38)

क़ुरआन मजीद में लोगों की इज़्ज़त व आबरू से खिलवाड़ करनेवालों की सज़ा का उल्लेख करने के बाद कहा गया है—

"और उन्हें सज़ा देते समय ईमानवालों का एक गरोह मौजूद रहे।" (क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-2)

इसी तरह बोहतान (तोहमत) लगानेवालों के लिए क़ुरआन में बाक़ायदा सज़ा तय की गई है। क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"जो लोग शरीफ़ और पाकदामन औरतों पर तोहमत लगाएँ, फिर चार गवाह न लाएँ, उन्हें अस्सी (80) कोड़े मारो।"

(क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-4)

सूरा नूर में ही आगे चलकर कहा गया है—

"जो लोग चाहते हैं कि मुसलमानों में बेहयाई (अश्लीलता) फैले उनके लिए दुनिया और आख़िरत में दर्दनाक सज़ा है।"

(क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-19)

(6) उन लोगों के बारे में जो शिक्षा की व्यवस्था मौजूद होने के बावजूद इल्म हासिल करने में दिलचस्पी नहीं दिखाते और उनके बारे में भी जो अपने पड़ोस में रहनेवाले अनपढ़ लोगों की शिक्षा पर ध्यान नहीं देते, एक दिन प्यारे नबी (सल्ल॰) ने ख़ुतबा दिया और मुसलमानों के बहुत-से गरोहों की तारीफ़ की और उनके बारे में भली बात कही फिर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"लोगों को क्या हो गया है कि अपने पड़ोसियों के अन्दर दीन(धर्म) की सूझ-बूझ पैदा नहीं करते और न उन्हें तालीम देते हैं, न उन्हें समझाते-बुझाते और नसीहत (उपदेश) करते हैं और न उन्हें भलाई का हुक्म देते हैं और न बुराई से रोकते हैं। लोगों को क्या हो गया है कि न अपने पड़ोसियों से दीन की तालीम लेते हैं और न अपने अन्दर दीन की समझ पैदा करते हैं और न नसीहत क़बूल करते हैं।"

फिर आप (सल्ल॰) ने आगे फ़रमाया—

"अल्लाह की क़सम! लोग ज़रूर अपने पड़ोसियों को तालीम दें और उनके अन्दर दीन की समझ पैदा करें। उन्हें समझाएँ, बुझाएँ, नसीहत करें, भलाई का हुक्म दें और बुराई से रोकें। और लोग अपने पड़ोसियों से तालीम लें और अपने अन्दर दीन की सूझ-बूझ पैदा करें और नसीहत क़बूल करें। वरना मैं उन्हें जल्द सज़ा दूँगा।"

फिर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) मंच के नीचे उतरे तो लोगों ने पूछा कि हम में से ये कौन लोग मुराद हैं? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ये अश्अरी हैं जो दीन की सूझ-बूझ रखते हैं और उनके पड़ोस में उजड्ड बद्दू बसते हैं।"

जब अश्अरियों को यह बात पता चली तो वे लोग मुहम्मद (सल्ल॰) की सेवा में हाज़िर हुए और पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! आपने कुछ लोगों का ख़ैर (भलाई) के साथ उल्लेख किया और हमारा उल्लेख शर (बुराई) के साथ किया। आख़िर हमारा क़ुसूर क्या है?

इसके जवाब में मुहम्मद (सल्ल॰) ने वही बातें दोहरा दीं जो आप (सल्ल॰) ने ख़ुतबे के दौरान कही थीं। फिर उन्होंने साफ़ शब्दों में पूछा, क्या हक़ीक़त में आपका ख़ुतबा हमारे ही तरफ़ था? आप (सल्ल॰) ने फिर वही बात दोहरा दी।

जब अश्अरियों को इस बात का यक़ीन हो गया कि नबी (सल्ल॰) का इशारा उन्हीं लोगों की तरफ़ है तो उन्होंने एक साल की मुहलत माँगी। आप (सल्ल॰) ने उन्हें अपने पड़ोसियों को दीन की तालीम देने और उनके अन्दर सूझ-बूझ पैदा करने के लिए एक साल की मुहलत दे दी। (इसके रावी इमाम तबरानी रह॰ हैं।) (हदीस : तरग़ीब)

ये जनता के बीच निरक्षता के ख़िलाफ़ एक तरह से जंग का एलान है। यह एलान आज के सभ्य एवं शिक्षित कहे जानेवाले देशों से चौदह सौ साल पहले इस्लाम ने किया था।

अम्न क़ायम करने के लिए जंग

इस्लाम जिस जंग का एलान दुनिया में अम्न क़ायम करने और उसकी हिफ़ाज़त के लिए करता है क़ुरआन की ज़बान में उसे 'जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह' कहा गया है। यह वह जंग नहीं है जिसे पश्चिम के दुराग्रही लोग ज़ोर-ज़बरदस्ती से इस्लाम क़बूल करवाने के लिए मज़हबी जंग (Holy War) का नाम देते हैं। इस तरह की कोई भी जंग इस्लाम के मिज़ाज से मेल नहीं खाती, क्योंकि इस्लाम ने तो लोगों के लिए आज़ादी के अक़ीदे का एलान किया है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

> "दीन को क़बूल करने के मामले में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-256)

यह जंग इस्लाम इसलिए करता है, ताकि उम्मत को बाहरी ज़ुल्म व फ़साद से आज़ादी दिलाए और सारी क़ौमों के लिए सामूहिक न्याय और मज़हबी आज़ादी की ज़मानत दी जाए। इन दोनों उद्देश्यों को क़ुरआन की इस आयत ने साफ़ शब्दों में बयान कर दिया है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

> "उनसे युद्ध करो, यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी न रहे और दीन (धर्म) पूरा-का-पूरा अल्लाह के लिए हो जाए।"
> (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-39)

यहाँ फ़ितना बाक़ी न रहने का मतलब ज़ुल्म व ज़्यादती को दूर करना है और पूरे दीन को अल्लाह के लिए ख़ालिस करने का मतलब सारे लोगों के लिए मज़हबी आज़ादी उपलब्ध कराना है।[1] इन दोनों उद्देश्यों को हासिल करने के बाद इस्लाम की जंग ख़त्म हो जाती है। जब दुश्मन ज़ुल्म व ज़्यादती से बाज़ आ जाता है और लोगों को अपने दीन और अक़ीदे के

1. इसका मतलब यह है कि लोगों की लोगों पर हाकिमियत ख़त्म होकर ख़ुदा की हाकिमियत स्थापित हो और ख़ुदा की मरज़ी चले। ख़ुदा ने ख़ुद इनसानों को अधिकार दिया है कि वे जो धर्म चाहें अपनाएँ। किसी पर कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती न की जाए।

सिलसिले में पूरी आज़ादी मिल जाती है तो फिर जंग का औचित्य ख़त्म हो जाता है। अल्लाह तआला खुद फ़रमाता है–

> "फिर यदि वे बाज़ आ जाएँ तो ज़ालिमों के सिवा किसी के ख़िलाफ़ कोई क़दम उठाना ठीक नहीं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-193)

क़ुरआन मजीद की निम्नलिखित आयतों के अध्ययन से हमें "जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह" के उद्देश्यों के बारे में बहुत ज़्यादा जानकारी प्राप्त होगी।

(1) "तुम्हें क्या हुआ है कि तुम अल्लाह की राह में उन बेबस मर्दों, औरतों और बच्चों के लिए जंग न करो जो कमज़ोर पाकर दबा लिए गए हैं और फ़रियाद कर रहे हैं कि ऐ हमारे रब! तू हमें इस बस्ती से निकाल, जिसके लोग अत्याचारी (ज़ालिम) हैं और हमारे लिए अपनी ओर से हमारा कोई समर्थक और मददगार (सहायक) पैदा कर दे।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-75)

(2) उन लोगों को जिनसे जंग की जा रही है (मुक़ाबले की) अनुमति दे दी गई, क्योंकि उनपर ज़ुल्म किया गया और यक़ीनन अल्लाह उनकी मदद की पूरी ताक़त रखता है। ये वे लोग हैं जो अपने घरों से नाहक़ निकाल दिए गए, सिर्फ़ इस क़ुसूर पर कि वे कहते थे कि 'हमारा रब अल्लाह है।' अगर अल्लाह लोगों को एक-दूसरे के ज़रिए से हटाता न रहे तो ख़ानक़ाहें और गिरजा और मअ्बद (यहूदी प्रार्थना भवन) और मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का बहुत ज़्यादा नाम लिया जाता है, सब ढा दी जाएँ।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयतें-39, 40)

(3) "जिन लोगों ने ईमान का रास्ता अपनाया है, वे अल्लाह की राह में लड़ते हैं और जिन्होंने कुफ़्र (अधर्म) का रास्ता अपनाया वे ताग़ूत (शैतान) की राह में लड़ते हैं। अतः तुम शैतान के समर्थकों से लड़ो और यक़ीन जानो, शैतान की चालें बहुत कमज़ोर हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-76)

क़ुरआन की ये चार आयतें 'जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह' के बारे में आई हैं। अब देखना यह है कि इन आयतों में जिस जिहाद का ज़िक्र है, वह क्या है?

पहली आयत बताती है कि जिहाद उन बेबस और मजबूर लोगों की आज़ादी के लिए है जो स्वयं ज़ुल्म की उन आँधियों को अपने-आप नहीं रोक सकते। उन्होंने अल्लाह से मदद माँगी है कि उन्हें इस सरज़मीन से निकाले जहाँ के ज़ालिम बड़े बेलगाम हो गए हैं और अल्लाह तआला से दुआ की गई है कि हमारे लिए ऐसे सहयोगी और मददगार उपलब्ध करा दे कि वे हमारी मदद करें और इस आज़माइश से निकाल दें।

फिर अल्लाह ने ईमानवाले बन्दों को उन मज़लूमों की आज़ादी के लिए ज़ंग पर उभारा। अल्लाह ने ऐसे प्रभावशाली ढंग से उन मज़लूमों का हाल बयान किया है कि ग़ैरतमन्द लोगों की हमीयत जाग उठे, "तुम्हें क्या हो गया है कि तुम अल्लाह के रास्ते में कमज़ोरों के लिए जंग नहीं करते।"

रही दूसरी और तीसरी आयतें, तो ये दोनों बताती हैं कि 'जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह' एक तरह से रक्षात्मक (ऐसी जंग जो लोगों की रक्षा के लिए की जाती है) जंग है। इसी लिए जिस बुनियाद पर जिहाद की इजाज़त दी गई है वह है : उनसे जंग की गई, उनपर ज़ुल्म ढाया गया, उन्हें उनके घरों से निकाला गया और उनके दीन और अक़ीदे के ताल्लुक़ से उनका पीछा किया गया और मज़हबी आज़ादी के लिए और समस्त धर्मों की इबादतगाहों की हिफ़ाज़त के लिए और ख़ुदा बेज़ार लोगों और दुराग्रहों की ओर से उनपर होनेवाले ज़ुल्म व अत्याचार को रोकने के लिए जिहाद की इजाज़त दी गई।

> "तो ख़ानक़ाहें, और गिरजा और मअ्बद (यहूदी प्रार्थना भवन) और मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का बहुत नाम लिया जाता है, सब ढा दी जातीं।" (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-40)

आपने देखा कि 'जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह' का मक़सद गिरजा घरों और इबादतगाहों (जिनमें मस्जिदें भी शामिल हैं) की अत्याचारियों और दमनकारियों की ज़्यादतियों से हिफ़ाज़त करना है। इसका मतलब गिरजा घर गिराकर

मस्जिद का निर्माण करना कदापि नहीं है जैसा कि इस्लाम के दुश्मन आरोप लगाते हैं। बल्कि वह तो गिरजा के पहलू में मस्जिद बनाता है, ताकि पता चले कि विभिन्न आसमानी मज़हबों के इबादत के तरीक़ों में यद्यपि अन्तर है, लेकिन उन सबका मक़सद एक ही है और इससे मुस्लिम उम्मत के अन्दर अध्यात्मिक (रूहानी) प्रकाश और नैतिक बुलन्दी में बढ़ोत्तरी होगी।

रही चौथी आयत–

"जिन लोगों ने ईमान का रास्ता अपनाया है वे अल्लाह की राह में लड़ते हैं और जिन्होंने कुफ़्र का रास्ता अपनाया वे ताग़ूत (शैतान) की राह में लड़ते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-76)

यह एक सीमा रेखा है, उस जंग के बीच जिसका एलान इस्लाम करता है और वह जंग जिसका एलान इस्लाम के दुश्मन करते हैं। इस्लाम जिस जंग का एलान करता है, वह हक़ की बुलन्दी, आज़ादी, इनसाफ़ और अख़लाक़ी व रूहानी मान्यताओं को बढ़ावा देने की जंग है और इस्लाम विरोधी जिस जंग का एलान करते हैं वह है ज़ुल्म व ज़्यादती की जंग और इसी के मुक़ाबले के लिए इस्लाम उठ खड़ा होता है। यह अपने-आपमें एक बड़ी दलील है कि यह ताग़ूत (शैतान) की छेड़ी हुई जंग है।

अब इसके बाद किसी तरह के शक की कोई गुंजाइश नहीं रह गई है कि 'जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह' (अल्लाह की राह में जिहाद) के बुलन्द और ऊँचे मक़सद का ताल्लुक़ इनसानियत की भलाई से है और यह हक़ीक़त में उन शरीफ़ाना उद्देश्यों को हासिल करने की राह में एक अज़ीम कोशिश है, जिनकी प्राप्ति के लिए धर्म अवतरित होते हैं और क़ानून बनाए जाते हैं और जिनको हासिल करने के लिए हर दौर में इनसानियत कोशिश करती रही है। इस जिहाद के लिए फ़ीं सबीलिल्लाह एक अनिवार्य शर्त है।

इसका प्रेरक माल हासिल करना, इमारतों को मिस्मार करना, क़ब्ज़ा और ग़लबा हासिल करना और क़ौमी या गरोही घमंड आदि हरगिज़ नहीं हो सकता। जो व्यक्ति इन चीज़ों में से किसी एक चीज़ के लिए भी जिहाद करेगा तो वह इस्लाम की नज़र में ऐसा मुजाहिद नहीं होगा जो मुजाहिदों

और शहीदों के अज्र (सवाब) का हक़दार हो।

प्यारे नबी (सल्ल०) की जंगों का इतिहास इस सच्चाई पर वाज़ेह दलील है कि आप (सल्ल०) ने इनसानियत के बुलन्द मक़सदों को हासिल करने के लिए दुश्मन ताक़तों से जंगें की हैं और उनके साथ घमासान का युद्ध हुआ है। आप (सल्ल०) ने युद्ध का एलान उस समय किया जब ख़ुद आप (सल्ल०) और आप (सल्ल०) की जमाअत के लोगों के साथ ज़ुल्म व सितम की इन्तिहा हो गई और उनके लिए अक़ीदे पर अमल करना मुश्किल हो गया। यहाँ तक कि उन्हें उनके घरों से निकाल दिया गया। जंगे-बद्र और उसके बाद होनेवाली सभी जंगें मज़हबी आज़ादी और अरब के इलाक़े में अम्न व सलामती क़ायम करने के लिए की गईं। (और ये जंगें नबी सल्ल० पर थोपी गईं आप सल्ल० ने इसकी पहल नहीं की।)

यह वही अम्न व सलामती है जिससे मक्कावालों ने ईमानवाले लोगों को महरूम कर दिया था। उन्होंने मक्का में ज़ुल्म व सितम का बाज़ार गर्म कर रखा था। हर तरफ़ से मुसलमानों को घेरा जा रहा था। उन्हें रोज़ी-रोटी, माल व असबाब और घर से महरूम कर दिया गया था। मगर आप (सल्ल०) ने उन मुश्किल हालात में भी लगातार तेरह वर्षों तक सब्र का दामन थामे रखा और हिकमत के साथ अल्लाह की तरफ़ लोगों को बुलाते रहे।

लेकिन जब क़ुरैश का अत्याचार अपनी हद को पहुँच गया। यहाँ तक कि उन्होंने अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और उनके प्यारे साथियों को क़त्ल करके उस नई दावत को उसके गहवारे में ही दफ़न कर देने का पक्का इरादा कर लिया और मुसलमानों ने दावते-इस्लामी के नए मर्कज़ मदीना की तरफ़ हिजरत कर ली। फिर हक़ की अलमबरदार इस नई ताक़त और बातिल शक्तियों के बीच कशमकश शुरू हो गई और यह कशमकश जब इन्तिहा को पहुँच गई तो दोनों के बीच बड़ी-बड़ी जंगें हुईं। एक गरोह हक़, रवादारी, और उच्च नैतिक मूल्यों को लेकर चल रहा था तो दूसरा गरोह बदतरीन क़िस्म की सरकशी और घमंड में डूबा हुआ था।

यह है इस्लाम में जंग का फ़लसफ़ा और उसके संभावित कारण। रही इस्लामी शासन-व्यवस्था, तो उसका ख़ुलासा आगे पेश किया जा रहा है।

इस्लाम में जंगी व्यवस्था

(1) जब मुस्लिम उम्मत के सामने यह बात अच्छी तरह वाज़ेह हो जाती है कि किसी क़ौम के अन्दर उसके ख़िलाफ़ ज़ुल्म व ज़्यादती, दुश्मनी और अविश्वास का माहौल बनता जा रहा है तो वह तुरंत अपने हर संभव संसाधनों और ताक़तों के ज़रिए से अपनी हिफ़ाज़त की तैयारी में लग जाती है। इस सिलसिले में क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"और जो भी तुझसे हो सके, उनके लिए ताक़त और बंधे रहने वाले घोड़े तैयार रखो (यानी युद्ध के लिए तैयार रहो), ताकि उसके द्वारा अल्लाह के दुश्मनों और अपने दुश्मनों और इनके अलावा उन दूसरे लोगों को भी डराओ जिन्हें तुम नहीं जानते।"

(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-60)

इस तरह यह तैयारी दुश्मन को भयभीत करने के लिए है न कि उसके साथ ज़्यादती करने के लिए। यह तैयारी उम्मत के दुश्मनों को डराने के लिए है। दोस्तों और जिन लोगों से हमारी संधि है, उनको डराने के लिए नहीं है।

(2) यदि दुश्मन ज़ुल्म व ज़्यादती से बाज़ आ जाए और जंग का इरादा त्याग दे तो मुस्लिम उम्मत के लिए उस समय यह ज़रूरी हो जाता है कि वह भी सुलह के लिए तैयार हो जाए। बल्कि आगे बढ़कर सुलह कर ले। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"ऐ नबी! अगर दुश्मन संधि और सलामती की तरफ़ झुके तो तुम भी इसके लिए झुक जाओ और अल्लाह पर भरोसा रखो। निस्सन्देह वह सब कुछ सुनने और जाननेवाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-61)

(3) यदि दुश्मन जंग पर ही उतारू हो और ज़ुल्म व ज़्यादती से बाज़ न आता हो तो फिर बुराई का बदला उसी जैसी बुराई होगी। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"जो कोई अपने ऊपर ज़ुल्म होने के बाद बदला ले ले, तो ऐसे

लोगों पर कोई आरोप नहीं। आरोप तो केवल उनपर आता है जो लोगों पर ज़ुल्म करते हैं और धरती पर नाहक़ ज़्यादती करते हैं। ऐसे लोगों के लिए दर्दनाक अज़ाब है।"

(क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयतें-41,42)

क़ुरआन में एक दूसरी जगह अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"अतः जो तुमपर ज़्यादती करे, तो जैसी ज़्यादती वह तुमपर करे, तुम भी उसी तरह उससे ज़्यादती का बदला लो। अलबत्ता अल्लाह से डरते रहो और यह जान रखो कि अल्लाह उन्हीं के साथ है जो उसकी सीमाओं को तोड़ने से बचते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-194)

(4) और जब जंग छिड़ जाए तो यह कोशिश होनी चाहिए कि जहाँ तक हो सके उसकी तबाहकारियाँ कम-से-कम हों। यही वजह है कि जंग में धोखा जाइज़ है। अतः हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जंग धोखा देना है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इसका मतलब दुश्मनों की चालों और योजनाओं को नाकाम बनाना और उनके इरादों और उम्मीदों को ध्वस्त करना। क्योंकि धोखे के ज़रिए कम-से-कम समय में जंग को ख़त्म किया जा सकता है और दोनों पक्षों के बीच सुलह हो सकती है। इस तरह जान और माल का नुक़सान भी कम-से-कम होगा।

(5) जब जंग अपने ज़ोरों पर हो तो ऐसी हालत में लड़नेवालों को बातिल शक्तियों के मुक़ाबले में साबित क़दम रहना चाहिए और अल्लाह से मदद माँगनी चाहिए और जंग के मैदान में अल्लाह को बहुत ज़्यादा याद करना चाहिए। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"ऐ ईमान लानेवालो! जब तुम्हारा किसी गरोह से मुक़ाबला हो जाए तो जमे रहो और अल्लाह को ज़्यादा-से-ज़्यादा याद करो, ताकि तुम्हें कामयाबी हासिल हो।

(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-45)

अल्लाह को बहुत ज़्यादा इसलिए याद करना है, ताकि यह बात हमेशा तुम्हारे मन में ताज़ा रहे कि तुम इस्लाम-दुश्मन शक्तियों से जंग न तो नाम व नमूद के लिए कर रहे हो, न किसी ख़ानदानी पक्षपात और बदले की भावना से कर रहे हो और न व्यक्तिगत तौर पर किसी के ऊपर अपना वर्चस्व जमाना चाहते हो, बल्कि तुम निष्ठा के साथ अल्लाह के रास्ते में दुश्मनों से जंग कर रहे हो।

इतना ही नहीं, बल्कि जंग के दौरान भी तुम्हारी नियत नहीं बदलनी चाहिए कि तुम्हारे दिल में जंग का कोई ऐसा तसव्वुर आ जाए जो दुश्मनों के लिए जंग का कारण हो। यदि ऐसा हुआ तो तुम भी उन्हीं की तरह ज़्यादती करनेवाले ज़ालिम हो जाओगे।

(6) जब जंग शुरू हो जाए तो दुश्मन से लड़ रहे सैनिकों को यह याद रखना चाहिए कि दुश्मन की सेना के साथ उसकी यह जंग कमज़ोरों और मज़लूमों की आज़ादी के लिए है और कोशिश यह हो कि जंग का दायरा जहाँ तक मुमकिन हो कम रहे, ताकि जंग की मार केवल उन्हीं लोगों पर पड़े जिन्होंने तलवार उठा रखी है और जंग शुरू की है। दुश्मन की सेना के अपराध में उसकी पूरी क़ौम को जंग की लपेट में न लिया जाए। न उनके एक पक्ष की ओर से उम्मत के ख़िलाफ़ ज़ुल्म व ज़्यादती के नतीजे में दुश्मन के सारे लोगों से बदला लिया जाए। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

> "तुम अल्लाह की राह में उन लोगों से लड़ो जो तुमसे लड़ें, किन्तु ज़्यादती न करो। बेशक अल्लाह ज़्यादती करनेवालों को पसन्द नहीं करता।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-190)

हमें उस समय इस्लाम इनसानियत की बुलन्दी पर दिखाई देता है जब वह बूढ़ों, विकलांगों, महिलाओं, बच्चों, इबादत के लिए इबादतगाहों में छिप जानेवालों, किसानों और आम शान्ति-प्रिय नागरिकों की हत्या को हराम (अवैध) क़रार देता है, जिन्होंने जंग में हिस्सा न लिया हो।

यहाँ और ज़्यादा वज़ाहत के लिए हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) की ओर से अरब महाद्वीप से रूम के इलाक़ों की ओर रवाना होनेवाली पहली इस्लामी

फ़ौज को की गई वसीयत का ज़िक्र करना उचित मालूम होता है। यद्यपि उस समय रूमियों की ओर से नई-नवेली इस्लामी रियासत पर लगातार हमले हो रहे थे।

हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की वसीयतों ने उन्हें मानव-इतिहास के सूरमाओं और क़ौमों के रहनुमाओं के बीच श्रेष्ठता प्रदान कर दी है। उन्होंने सेना को सम्बोधित करते हुए कहा—

> "किसी का अंग भंग न करना, छोटे बच्चों, बूढ़ों और औरतों की हत्या न करना, खजूर के गुच्छों को मत काटना और न उन्हें जलाना, किसी फलदार पेड़ को मत काटना, और बकरी, गाय और ऊँट आदि को खाने के अलावा यूँ ही ज़ब्ह न करना। बहुत जल्द तुम्हारा गुज़र ऐसे लोगों के पास से होगा जिन्होंने ख़ानक़ाहों में इबादत के लिए अपने-आपको फ़ारिग़ कर रखा है तो उन्हें उनके हाल पर छोड़ दो।"

ये नसीहतें उस मुस्लिम उम्मत के लिए हैं जो सुलह करने की कामना के साथ दुश्मनों से जंग करती है और वह कभी ज़ुल्म-ज़्यादती करनेवाली उम्मत नहीं बनी और न बदले की भावना से कभी दुश्मन क़ौम के अन्दर किसी तरह की विध्वंसक कार्यवाई की।

(7) उसी तरह घमासान युद्ध के बीच जब दुश्मन फ़ौज संधि की पेशकश करे तो हमें भी उस पेशकश को स्वीकार कर लेना चाहिए, चाहे हम जीत के क़रीब ही क्यों न पहुँच गए हों। फिर संधि हो जाने के बाद हमें उसकी पाबन्दी भी करनी चाहिए। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

> "अह्द को पूरा करो। अह्द के बारे में अवश्य पूछा जाएगा।"
> (क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-34)

फिर यदि उनकी ओर से संधि का उल्लंघन हो फिर भी हमारे लिए यह जाइज़ नहीं है कि हम उनपर यकायक हमला कर दें, बल्कि हमें उनको अवगत कराना होगा कि हमारे और उनके बीच जो संधि हुई थी, वह उनके इस कृत्य की वजह से ख़त्म हो चुकी है। यानी उन्हें भी युद्ध की तैयारी का

अवसर दिया जाना चाहिए। क़ुरआन में इसी को 'न-ब-ज़' (यानी वादा तोड़ना) कहा गया है—

> "यदि तुम्हें किसी क़ौम से विश्वासघात की आशंका हो तो तुम भी उसी तरह ऐसे लोगों के साथ हुई संधि को खुल्लम-खुल्ला उनके आगे फेंक दो। निश्चय ही अल्लाह को विश्वासघात करनेवाले पसन्द नहीं।" (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-58)

(8) जब जंग ख़त्म हो जाए, दुश्मन परास्त हो जाएँ और मुसलमान ग़ालिब आ जाएँ तो मुसलमानों को उन सारी बुरी हरकतों से बाज़ रहना चाहिए जो दूसरी विजयी क़ौमों का तरीक़ा रहा है। यहाँ न इज़्ज़त व आबरू पर हमले होंगे, न शहरों और आबादियों को तबाह किया जाएगा, न परास्त क़ौमों की धन-सम्पत्तियाँ ज़ब्त की जाएँगी और न वहाँ के शरीफ़ों को अपमानित किया जाएगा और न बदले का बाज़ार गर्म किया जाएगा।

बल्कि उस पराजित क़ौम के लोगों के साथ माफ़ कर देने और दरगुज़र करने का मामला किया जाएगा। उन्हें हर तरह की मज़हबी आज़ादी दी जाएगी। उनके साथ अम्न व इनसाफ़ का मामला किया जाएगा और बुराई को हर मुमकिन तरीक़े से मिटाने की कोशिश की जाएगी। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

> "ये वे लोग हैं कि अगर ज़मीन पर हम उन्हें सत्ता प्रदान करें तो वे नमाज़ क़ायम करेंगे, ज़कात देंगे, भलाई का हुक्म देंगे और नापसन्दीदा कामों (बुराई) से रोकेंगे और सभी मामलों का अंतिम परिणाम अल्लाह ही के हाथ में है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-41)

यह आयत विजयी गरोह के लिए एक वाज़ेह नसीहत (रहनुमाई) है कि उन्हें विजय प्राप्त करने के बाद क्या करना चाहिए और वे चार अहम काम ये हैं—

(i) **नमाज़ क़ायम करना**

यह इस बात की निशानी है कि इस्लाम दुनिया में रूहानी बुलन्दी को

आम करना चाहता है।

(ii) **ज़कात देना**

यह इस बात का इशारा है कि इस्लाम क़ौमों के बीच सामाजिक न्याय को आम करना चाहता है।

(iii) **भलाई का हुक्म देना**

इसका मतलब यह है कि इस्लाम हर उस काम में सहयोग चाहता है जिसमें लोगों के लिए भलाई हो, और उसमें उनके लिए अम्न व शान्ति का सामान हो।

(iv) **बुराई से रोकना**

यह शर (बुराई) के मुक़ाबले में खड़े होने का संकेत है। क्योंकि यही शक्तियाँ हैं जो जंग के लिए शोर मचाती हैं और लोगों से अम्न व शान्ति छीन लेती हैं। यही वह श्रेष्ठ काम है जो प्रगति के इस दौर में सभ्य क़ौमें अंजाम देती हैं और वह दौर इनसानियत के लिए बहुत ही ख़ैर व बरकत का दौर होता है।

(9) जहाँ तक क़ैदियों का मामला है तो इस्लाम उनको अनुचित सज़ा देने या उनके शरीर को अंग-भंग करने को नाजाइज़ क़रार देता है। इस्लाम इस बात की इजाज़त नहीं देता है कि उन्हें भूखा रखा जाए और उन्हें फ़ाक़ा झेलना पड़े। इस्लाम तो क़ैदियों को खाना खिलाने को अज्र व सवाब क़रार देता है। क़ुरआन में अल्लाह तआला ने अपने ख़ास बन्दों का उल्लेख करते हुए, क़ैदियों को खाना खिलाने को उनकी ख़ास ख़ूबी के तौर पर बयान किया है—

> "वे मुहताज, अनाथ और क़ैदी को खाना इस चाहत के साथ खिलाते हैं कि हम तो केवल अल्लाह की ख़ुशी के लिए तुम्हें खिलाते हैं, तुमसे न कोई बदला चाहते हैं, और न शुक्रिया के तलबगार हैं।" (क़ुरआन, सूरा-76 दह्र, आयतें-8,9)

फिर शासक को यह अधिकार दिया गया है कि चाहे वह फ़िदया लेकर

क़ैदियों को छोड़ दे या चाहे तो फ़िदया भी न ले और ऐसे ही छोड़ दे। अल्लाह फ़रमाता है—

> "जब उन्हें (क़ैदियों को) अच्छी तरह क़ाबू में कर चुको तो उन्हें मज़बूती से बाँध दो। उसके बाद (तुम्हें इख़्तियार है) या तो एहसान करो या फ़िदया (अर्थ-दंड) का मामला करो, यहाँ तक कि युद्ध अपने बोझ उतारकर रख दे।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-47 मुहम्मद, आयत-4)

इस आयत में कहीं भी इस बात का संकेत नहीं है कि क़ैदियों को ग़ुलाम बना लेना चाहिए। बल्कि क़ुरआन में एक भी आयत ऐसी नहीं है जिससे यह मालूम होता हो कि इस्लाम क़ैदियों या पराजित क़ौमों को ग़ुलाम बनाता है।

जहाँ तक हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के ज़माने में और आप (सल्ल॰) के बाद ग़ुलाम बना लेने का मामला है तो उस समय यह एक आम रिवाज था और सारी क़ौमों के बीच एक स्वीकार्य परम्परा थी। दुश्मन जब मुसलमानों को पराजित करता तो उन्हें ग़ुलाम बना लेता। उसी तरह जब मुसलमान दुश्मनों को पराजित करते तो वे भी उन्हीं जैसा मामला करते और उन्हें ग़ुलाम बना लेते।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के बाद जो कुछ लोगों ने किया, वह उस समय की एक राजनीतिक ज़रूरत थी। यह इस्लाम का कोई अटल क़ानून न था कि जिसे छोड़ा न जा सकता हो।

यद्यपि इस्लाम उस समय जंगी और आर्थिक कारणों से ग़ुलामी की प्रथा को पूरी तरह समाप्त न कर सका, लेकिन उसने अपने क़ानून और शरीअत में उसे समाप्त करने के लिए स्थायी बुनियादें रख दीं।

यदि इस्लाम ने दुश्मनों को सज़ा देने के लिए एक हंगामी ज़रूरत के तहत ग़ुलामी की प्रथा को जारी रखा तो उसने दूसरी ओर ग़ुलामों की आज़ादी के लिए इतने अधिक द्वार खोल दिए कि किसी दूसरे क़ानून में उसकी मिसाल नहीं मिलती है। इस्लाम ने हुकूमत को भी यह हिदायत दी

है कि वह सामाजिक न्याय के बजट में से एक हिस्सा ग़ुलामों की आज़ादी के लिए सुरक्षित रखे। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"सदक़े तो बस ग़रीबों, मुहताजों, और उन लोगों के लिए हैं, जो इस काम पर नियुक्त हों और उनके लिए जिनके दिलों को आकृष्ट करना (तालीफ़े-क़ल्ब) मतलूब हो और गर्दनों को छुड़ाने और क़र्ज़दारों और तावान भरनेवालों की सहायता करने में, अल्लाह की राह में, मुसाफ़िरों की सहायता करने में लगाने के लिए हैं। यह अल्लाह की ओर से ठहराया हुआ हुक्म है। अल्लाह सब कुछ जाननेवाला, अत्यन्त तत्वदर्शी है।"

(क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-60)

क़ुरआन ने ज़कात की मदों में ग़ुलामों की आज़ादी का ख़ासतौर पर उल्लेख करके यह साबित कर दिया कि इस्लाम को इस मामले में अमेरिका के ग़ुलामों की आज़ादी के आन्दोलन पर दसियों सदी की श्रेष्ठता हासिल है।

इस्लाम ने मानवीय मूल्यों का ख़याल करते हुए उन्हें घृणा और अपमान से निकालकर मान-सम्मान प्रदान किया है। उन्हें समाज के अन्दर वही इनसानी हैसियत दी है जो दूसरों को हासिल है और इस बात की हिदायत भी की गई है कि उनके साथ वैसा ही सुलूक किया जाए जैसा एक आज़ाद व्यक्ति के साथ किया जाता है। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया है–

"तुम्हारे ग़ुलाम तुम्हारे भाई हैं, अल्लाह ने उन्हें तुम्हारे अधीन बनाया है तो जिसका भाई उसके अधीन है उसे चाहिए कि जो ख़ुद खाए उसी में से उसे खिलाए और जो ख़ुद पहने उसी में से उसे पहनाए, और उनपर ऐसा बोझ न डालो जो उसे सहन न हो और यदि उनपर ऐसा बोझ डाल दो तो उस बोझ को उठाने में उनकी मदद करो।" (हदीस : बुख़ारी)

इस तरह ग़ुलाम मुसलमानों के घर के अन्दर घुल-मिलकर रहता है, यहाँ तक कि उस घर का एक सदस्य बन जाता है। यही कारण है कि ग़ुलामों ने इस्लामी समाज में मान-सम्मान का वह मुक़ाम हासिल किया जिसकी कोई

मिसाल इतिहास में नहीं मिलती। कुछ तो मुस्लिम रियासतों में ऊँचे पदों पर आसीन हुए। इस्लामी इतिहास के अधिकांश दौर में ग़ुलामों की सन्तानों में से मुसलमानों के ख़लीफ़ा (शासक) भी हुए हैं।

(10) मुसलमानों को यह सख़्त ताकीद की गई है कि वे पराजित क़ौमों, उनकी जान व माल और उनकी इबादतगाहों का सम्मान करें। हुकूमत उन्हें हर प्रकार की सुरक्षा प्रदान करेगी। उन्हें पूरी तरह नागरिक अधिकार प्रदान किए जाएँगे और उनसे केवल यह माँग होगी कि वे इख़्लास (निष्ठा) के साथ हुकूमत की वफ़ादारी करें।

वे एक मामूली-सी रक़म सरकार को जिज़या (टैक्स) के तौर पर अदा करेंगे। विजयी क़ौमें इस्लाम से पहले और इस्लाम के बाद भी पराजित क़ौमों पर इस तरह का टैक्स लगाती रही हैं।

मौजूदा दौर में भी हुकूमतें अपनी जनता पर अनेक परिस्थितियों में विभिन्न तरह के टैक्स लगाती रहती हैं। लेकिन इस्लाम में जिज़या की हैसियत दूसरी क़ौमों की तुलना में बिलकुल अलग है।

जिज़या : कुछ ज़रूरी व्याख्या

(1) जिज़या इस्लाम से पहले और इस्लाम के बाद विभिन्न नामों से दुनिया-भर में प्रचलित रहा है और यह पराजित क़ौमों पर उन्हें रुसवा करने और उन्हें मनोवैज्ञानिक स्तर पर नीचा दिखाने के लिए लागू किया जाता है। इस तरह पराजित क़ौमों से बदला लेने और उनसे दुश्मनी निकालने का एक ज़रिआ था।

लेकिन इस्लाम ने पराजित क़ौमों पर जिज़या इसलिए लागू किया, ताकि उनके अक़ीदे, उनकी धन-सम्पत्ति और मान-मर्यादा की रक्षा की जाए और वे भी मुसलमानों के साथ समान अधिकार के साथ रह सकें।

इसकी सबसे बड़ी दलील यह है कि विजयी मुसलमानों और पराजित क़ौमों के बीच तय पानेवाली संधियों में उनके अक़ीदों, सम्पत्तियों एवं मान-मर्यादाओं की रक्षा का ख़ासतौर पर उल्लेख किया जाता था। इसी तरह की एक संधि मुसलमानों के महान सिपहसालार ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि॰) ने ईसाई पादरी 'नातिफ़' के साथ की थी। जो इस प्रकार है–

> "मैंने आप लोगों से जिज़या और हिफ़ाज़त की संधि की है। यदि हम आपकी रक्षा करें तो हमें जिज़या लेने का हक़ होगा, अन्यथा हमें जिज़या लेने का कोई हक़ न होगा जब तक कि हम आपकी हिफ़ाज़त न करें।" (बिलाज़री)

इन संधियों के बारे में ऐसे पुख़्ता ऐतिहासिक सुबूत मौजूद हैं जो इस बात को साबित करते हैं कि मुसलमानों ने हमेशा जिज़या उसी उसूल की बुनियाद पर लिया है जो पिछली पंक्तियों में बयान हुआ है। इस्लामी इतिहास को जाननेवाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि॰) ने किस तरह हिम्सवालों का जिज़या वापस कर दिया था और उबैदा-बिन-जर्राह (रज़ि॰) ने दिमश्क़वालों का जिज़या लौटा दिया था।

इसी तरह दूसरे मुस्लिम सिपहसालार जब जंगे-यरमूक से पहले सीरिया छोड़ने पर मजबूर हुए तो उन्होंने जितने शहरों पर जीत हासिल करके वहाँ

के नागरिकों से जिज़या वुसूल किया था, वह सब उन्हें वापस कर दिया और उन शहरों के नागरिकों से मुस्लिम सिपहसालारों ने साफ़ शब्दों में कहा—

> "हमने आपके जान व माल और इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त व सहयोग के लिए जिज़या लिया था। अब हम आपका सहयोग एवं सुरक्षा नहीं कर सकते, तो ये आपके माल हैं जो हम आपको वापस कर रहे हैं।"

(2) दूसरी क़ौमों में जिज़या पराजित क़ौमों के शोषण और उनका माल हड़पने के लिए होता था और इस जिज़या की मात्रा इतनी अधिक होती थी कि उसकी अदाएगी उनके बस से बाहर होती थी। लेकिन इस्लाम ने पराजित क़ौमों पर जो जिज़या लगाया उसका शोषण या पराजित क़ौमों के माल के लालच से कोई लेना देना न था। जंग में भाग लेनेवालों और काम की योग्यता रखनेवालों से जिज़या के नाम पर बहुत ही कम रक़म वुसूल की जाती थी और यह तीन तरह के लोगों से अलग-अलग हिसाब से लिया जाता था।

(i) जिज़या की सबसे अधिक राशि धनवानों से 48 दिरहम वार्षिक वुसूल की जाती थी चाहे उनके पास कितनी ही धन-सम्पत्ति क्यों न हो।

(ii) जिज़या की औसत राशि 24 दिरहम वार्षिक थी। यह व्यापारियों एवं किसानों से वुसूल की जाती थी।

(iii) जिज़या की सबसे कम राशि पेशेवर कामगारों से ली जाती थी। यह 12 दिरहम वार्षिक थी।

एक मुसलमान केवल अपने माल की जितनी ज़कात अदा करता है, उसके मुक़ाबले में यह किसी भी दृष्टि से उल्लेखनीय नहीं थी। फिर भी इस बात को और खोलकर बयान करेंगे।

मान लीजिए यदि एक मुसलमान एक मिलियन (दस लाख) दिरहम का मालिक है तो 100 में ढाई प्रतिशत के हिसाब से उसपर 25000 दिरहम ज़कात वाजिब होगी और यह ज़कात, शरीअत के लिहाज़ से जो उसपर फ़र्ज़ है उसके हिसाब से होगी।

लेकिन यदि उस मुसलमान का एक ईसाई पड़ोसी भी एक मिलियन (दस लाख) का मालिक है तो उसे 48 दिरहम वार्षिक ही जिज़या के तौर पर अदा करना होगा। इसका साफ़ मतलब यह हुआ कि एक ईसाई जिज़या के तौर पर सरकार को जितना देगा, मुसलमान उससे पाँच सौ गुना अधिक सरकार को ज़कात के रूप में अदा करेगा। इससे साबित हुआ कि इस्लाम पराजित क़ौमों के साथ शोषण का मामला कदापि नहीं करता है।

इस्लामी व्यवस्था में जिन लोगों पर जिज़या लागू किया जाता है, उनमें इस बात का ख़ास ख़याल रखा जाता है कि वे जिज़या देने की हालत में हैं या नहीं। इसी बुनियाद पर फ़क़ीरों, बच्चों, महिलाओं, इबादत में लीन राहिबों, अंधों, बेरोज़गारों और बीमारों से जिज़या नहीं लिया जाता था। इस सिलसिले में सबसे बड़ी दलील इस्लाम के नामवर सिपहसालार हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) के दौर में की गई वह संधि है जो उन्होंने नातिफ़ नाम के एक पादरी के साथ की थी। उसमें कहा गया है—

> "मैंने आप लोगों से संधि की है कि रोज़गार से लगे प्रत्येक व्यक्ति से जिज़या लिया जाएगा और आप सब लोगों की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी इस्लामी हुकूमत की होगी और यह जिज़या प्रत्येक व्यक्ति से उसकी हैसियत के मुताबिक़ लिया जाएगा। मालदार से उसकी माली हालत के मुताबिक़ और फ़क़ीर और मुहताज से उसकी फ़क़ीरी और मुहताजी के मुताबिक़ जिज़या लिया जाएगा।"

(3) मुसलमानों से पहले दूसरी क़ौमों के यहाँ जिज़या देनेवालों के लिए विजयी सेना में भर्ती होने, विजयी सेना का गौरव बढ़ाने, और उनकी सत्ता के विस्तार में ख़ून बहाने से किसी सूरत में भी छूट नहीं थी। बल्कि वे लोग जिज़या भी देते थे और जंग के लिए ज़बरदस्ती हाँककर भी ले जाए जाते थे।

लेकिन इस्लाम ने अपने दौर में पराजित क़ौमों के लोगों को सैनिक सेवा में पूरी तरह छूट दे रखी थी। चूँकि इस्लाम सारी दुनिया में इस्लामी आज़ादी के संदेश को पहुँचाने के लिए इस राह की रुकावटों को दूर करने के लिए संघर्ष कर रहा था, इसलिए यह बात न्याय के ख़िलाफ़ थी कि एक ऐसी क़ौम

जो इस संदेश (इस्लाम) के उसूलों को न मानती हो, उसके नौजवानों को उसकी राह में जंग करने और ख़ून बहाने के लिए आगे बढ़ाया जाए।

अतएव यही वजह है कि ज़िम्मियों का इस्लामी लशकर में हर तरह की सैनिक सेवाओं से पूरी तरह छूट दे दी गई थी। इस सिलसिले में उन पक्षपाती विश्लेषकों की राय सही नहीं है जो ये कहते हैं कि ज़िम्मियों को सैनिक सेवाओं से इसलिए छूट मिली हुई थी क्योंकि उनके अन्दर जंगी महारत की कमी थी और वे जिहाद के गौरव व सम्मान से पूरी तरह अवगत न थे।

इस बात की दलील यह है कि इस्लामी रियासत का कोई ज़िम्मी स्वंयसेवकों के तौर पर इस्लामी लशकर में सैनिक सेवाएँ अंजाम देना चाहता है तो उसकी इस सेवा को क़बूल किया जाएगा और उससे जिज़या की रक़म नहीं ली जाएगी। इस तरह आज हमारे इस दौर की ज़बान में जिज़या सैनिक सेवाओं से छूट का मुआवज़ा है।

(4) इस्लाम से पहले विजयी क़ौम पराजित क़ौम का कोई हक़ स्वीकार नहीं करती थी। यहाँ तक कि उस क़ौम के फ़क़ीरों, मिसकीनों और बीमारों का भी कोई हक़ नहीं था। उनसे उनकी सहन-शक्ति से अधिक जिज़या और टैक्स वसूल किया जाता था और उनके मुहताजों और मिसकीनों को भी कुछ नहीं दिया जाता था। बल्कि जिज़या देनेवाले मालदार लोगों की भी ऐसी हालत हो जाती थी कि उन्हें ग़रीबी, भुखमरी और बीमारी से जूझना पड़ता था।

इसके विपरीत इस्लाम में सारे ज़िम्मियों के लिए चाहे वह जिज़या देता हो या न देता हो, अपनी ओर से उनके लिए सामूहिक ज़िम्मेदारी उठाने की व्यवस्था होती थी। इस्लाम ज़िम्मियों को भी मुसलमानों की तरह देश का नागरिक समझता है। इस्लाम इसको हुकूमत की ज़िम्मेदारी क़रार देता है कि वह ज़िम्मियों को सम्मानजनक ज़िन्दगी गुज़ारने की ज़मानत दे, ताकि उन्हें भीख माँगने और ग़रीबी की ज़िन्दगी गुज़ारने पर मजबूर न होना पड़े।

जहाँ तक उन क़ुरआनी आदेशों का ताल्लुक़ है जो परेशानहाल लोगों और मुहताजों के गुज़र बसर करने की व्यवस्था का हुक्म देते हैं, वे आदेश

केवल मुसलमानों के लिए ख़ास नहीं हैं, बल्कि वे आम हैं और समाज के सभी वर्गों पर समान रूप से लागू होते हैं। अल्लाह फ़रमाता है–

"रिशतेदारों, मिसकीनों और मुसाफ़िरों को उसका हक़ दो।"

(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-26)

एक दूसरी जगह अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"और उनके मालों में माँगनेवालों और ग़रीबों का हक़ है।"

(क़ुरआन, सूरा-51 ज़ारियात, आयत-19)

हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि॰) ने हियरावालों के साथ जो समझौता किया था उसमें साफ़ तौर से इसका ज़िक्र किया गया था–

"जो बूढ़े और मजबूर लोग हैं, या जिनपर कोई आफ़त टूट पड़ी है, या जो पहले मालदार थे और अब ग़रीब हो गए हैं और उनको उनके धर्म के लोग सदक़ा देने लगे हैं तो ऐसे सभी लोगों से जिज़या नहीं लिया जाएगा और उनकी और उनके बाल-बच्चों की माली सरपरस्ती की ज़िम्मेदारी मुसलमानों के बैतुल-माल पर होगी।" (हदीस : किताबुल-ख़िराज, अबू-यूसुफ़)

हज़रत उमर (रज़ि॰) ने अपनी ख़िलाफ़त के दौर में इस महान इस्लामी उसूल को पूरी तरह लागू किया था। एक बार उनका गुज़र एक बूढ़े व्यक्ति के पास से हुआ जो लोगों से सदक़ा माँग रहा था। जब उन्होंने उससे उसका हाल-चाल पूछा तो मालूम हुआ कि वह जिज़या देनेवालों में से है। आपने उसका हाथ पकड़ा और उसे अपने घर ले गए और घर में जो कुछ खाना कपड़ा वग़ैरा मौजूद था वह उसे दिया फिर उसे लेकर बैतुल-माल के नाज़िम के पास गए और उससे कहा–

"इस व्यक्ति का और इस जैसे दूसरे व्यक्तियों का ख़याल रखो और उन्हें इस्लामी हुकूमत के ख़ज़ाने से इतना वज़ीफ़ा दो जो इनके और इनके बाल-बच्चों के लिए काफ़ी हो। इसलिए कि अल्लाह फ़रमाता है, 'सदक़ात तो फ़क़ीरों और मिसकीनों के लिए हैं।' फ़क़ीर तो मुसलमान हैं और मिसकीन अह्ले-किताब हैं।" (बिलाज़री)

(5) इस्लाम से पहले पराजित क़ौमों पर हर हाल में जिज़या लगता था। लेकिन इस्लाम में ऐसा कभी नहीं हुआ। ख़लीफ़ा को इस बात का हक़ हासिल है कि चाहे तो सारे ज़िम्मियों का जिज़या माफ़ कर दे। जैसा कि अबू-उबैदा (रज़ि॰) ने उर्दुन (यमन) में सामिरा और फ़लस्तीन के ईसाइयों का जिज़या माफ़ कर दिया था। उसी तरह हज़रत उमर (रज़ि॰) ने शहरयार और उसकी क़ौम के लोगों का इस वजह से जिज़या माफ़ कर दिया था कि उन्होंने उनके साथ दुश्मनों से जंग करने का समझौता कर लिया था।

हज़रत मुआविया (रज़ि॰) ने आरमीनिया के नागरिकों को तीन साल के लिए जिज़या से छूट दे दी थी। इस्लामी फ़िक़्ह का यह एक सर्वमान्य उसूल है कि जो ज़िम्मी भी इस्लामी सेना में दाख़िल होगा, या इस्लामी हुकूमत में जनहित की किसी भी सेवा के लिए अपने-आपको पेश करेगा, तो उसे जिज़या से छूट मिल जाएगी।

(6) इस्लाम से पहले विजयी लोगों के अलावा सारे लोगों से जिज़या वसूल किया जाता था चाहे उन्होंने युद्ध में भाग लिया हो या न लिया हो। लेकिन इस्लाम केवल अपने दुश्मनों में से उन लोगों पर जिज़या लागू करता है जो उससे जंग पर उतारू रहे हों। जहाँ तक आम ग़ैर-मुस्लिम नागरिकों का ताल्लुक़ है तो वे लोग जो इस्लामी फ़ौज से जंग में शामिल नहीं रहे हैं, उनसे जिज़या नहीं लिया जाएगा। जैसा कि हज़रत उमर (रज़ि॰) ने तग़लब के ईसाइयों के साथ किया। यदि हम क़ुरआन की उस आयत का अध्ययन करें जिसमें जिज़या का ज़िक्र किया गया है तो हम पाते हैं—

> "वे किताबवाले जो न अल्लाह पर ईमान रखते हैं और न अंतिम दिन पर और न अल्लाह और उसके रसूल के हराम ठहराए हुए को हराम ठहराते हैं और न दीने-हक़ का अनुपालन करते हैं, उनसे लड़ो, यहाँ तक कि सत्ता से विलग होकर और छोटे बनकर जिज़या देने लगें। (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-29)

इस आयत से यह बात मालूम हुई कि जब हम किताबवालों से जंग के बाद उनपर ग़ालिब होंगे तो हमें वे जिज़या देंगे। यह बात भी हमारे सामने

रहे कि हम हरेक किताबवाले से जंग नहीं करेंगे, बल्कि हमारी जंग तो उनसे होगी जो हम से जंग करेंगे और हमारे ख़िलाफ़ हथियार उठाएँगे या इस्लामी रियासत के लिए ख़तरा बनेंगे। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

> "तुम अल्लाह की राह में उन लोगों से लड़ो जो तुमसे लड़ते हैं और ज़्यादती न करो, अल्लाह तआला ज़्यादती करनेवालों को पसन्द नहीं करता।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-190)

जिज़यावाली आयत में लड़ाई का हुक्म केवल उनके लिए है जो हमसे लड़ें और जिन लोगों ने हमसे जंग नहीं की उनसे जंग करना खुली ज़्यादती है। अल्लाह तआला ज़्यादती किसी हाल में पसन्द नहीं करता—

> "अल्लाह तुम्हें इससे नहीं रोकता कि तुम उन लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करो और उनके साथ न्याय करो, जिन्होंने तुमसे धर्म के मामले में जंग नहीं की और न तुम्हें तुम्हारे अपने घरों से निकाला। निस्सन्देह अल्लाह न्याय करनेवालों को पसन्द करता है। अल्लाह ने तुम्हें केवल उन लोगों से दोस्ती करने से रोका है जिन्होंने धर्म के मामले में तुमसे जंग की और तुम्हें तुम्हारे अपने घरों से निकाला और तुम्हें निकालने में एक-दूसरे की मदद की।"
> (क़ुरआन, सूरा-60 मुम्तहिना, आयतें-8,9)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो किताबवाले (यहूदी और ईसाई) इस्लामी रियासत में रहते-बसते हैं और निर्माण एवं विकास कार्यों में अच्छी नीयत के साथ शामिल होते हैं और देश के साथ उनकी वफ़ादारी है तो ऐसे लोगों से जंग करना जाइज़ नहीं है और उनसे जिज़या भी नहीं लिया जाएगा।

ऊपर जो कुछ बयान किया गया है वही भाव वास्तव में जिज़या और जंग की आयतों से पूरी तरह वाज़ेह तौर पर उभरकर हमारे सामने आता है और हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने अपनी ज़िन्दगी में अरब महाद्वीप के ईसाईयों और यहूदियों से जो जिज़या लिया था वह आप (सल्ल॰) ने इस आयत पर अमल करते हुए लिया था। आप (सल्ल॰) ने उनसे जिज़या इसलिए लिया था कि उन्होंने इस्लाम से बाक़ायदा जंग की, उसके ख़िलाफ़

माहौल तैयार किया और उसके दुश्मनों (ईरानियों और रूमियों) के साथ मिलकर इस्लाम के ख़िलाफ़ समझौता किया।

इसी तरह मुसलमानों ने जब सीरिया, मिस्र और फ़ारिस पर विजय हासिल की तो वहाँ के अह्ले-किताब से जिज़या लिया, क्योंकि जिन देशों के वे नागरिक थे उन्होंने इस्लामी रियासत के ख़िलाफ़ जंग का एलान कर रखा था। चूँकि यहूदियों और ईसाइयों ने भी इस्लाम के ख़िलाफ़ जंग में हिस्सा लिया था इसलिए उनसे भी जिज़या वुसूल किया गया।

अलबत्ता इस्लामी सेना के विजय अभियान के बाद जिज़या लेने का सिलसिला लगातार जारी रहा, जबकि अह्ले-किताब मुसलमानों की तरह इस्लामी रियासत के वफ़ादार रिआया (प्रजा) बन चुके थे और यह फ़ैसला मुस्लिम हुक्मरानों का था, इस्लाम का नहीं और इस समय बात इस्लाम के जिज़या पर हो रही है। मुस्लिम रियासतों में जिज़ये के इतिहास पर बहस नहीं की जा रही है।

यह बात पूरी तरह साफ़ हो चुकी है कि जिज़या केवल उन लोगों से लिया जाएगा जो मुसलमानों से जंग पर उतारू हों। लेकिन कुछ इस्लाम-विरोधी लोग इस्लाम पर यह आरोप लगाते हैं कि इस्लामी शासन व्यवस्था में यह ज़रूरी है कि आज भी मुस्लिम देशों में रहनेवाले ग़ैर-मुस्लिमों से जिज़या लिया जाए। हालाँकि ज़्यादातर लोग उनके इस आरोप से सहमत नहीं हैं।

हम यहाँ यह बात दोबारा वाज़ेह करना चाहते हैं कि जिज़या सिर्फ़ उसपर लागू किया जाएगा जो इस्लामी स्टेट के ख़िलाफ़ अपनी दुश्मनी का एलान करे और वह इस्लामी रियासत का सदस्य न हो, बल्कि किसी दुश्मन देश का नागरिक हो।

दूसरी बात यह है कि जिज़या इस्लाम की निगाह में रियासत के काम काज में कोई बुनियादी हैसियत नहीं रखता है। बल्कि हालात के मुताबिक़ उसमें बदलाव मुमकिन है। इसी लिए रियासत के सरबराह को यह हक़ है कि वह जब चाहे, मस्लहत के मुताबिक़ उसे रोक दे और जिज़या माफ़ कर दे।

जिज़या के बारे में दो सन्देह

यह पहले ही बताया जा चुका है कि जिज़या में रुसवाई और तुच्छ समझने का भाव नहीं है। लेकिन इस सिलसिले में कुछ लोगों के दिलों में कुछ सवालात पैदा हो रहे होंगे। हम यहाँ उन्हीं सवालों का जवाब देंगे। जैसे कोई कह सकता है कि जब मामला यह है, जैसा कि आपने बयान किया है तो जिज़यावाली आयत में शब्द 'साग़िरून'' के क्या अर्थ होंगे और बहुत-से इस्लामी दौर के ज़िम्मियों से बहुत ही रुसवाकुन तरीक़े से जिज़या क्यों लिया जाता था?

इसका सही जवाब जानने के लिए यह ज़रूरी है कि क़ुरआन में जिज़या के बारे में आई हुई आयत की ऐसी व्याख्या की जाए जो इस्लाम के आम उसूलों के मुताबिक़ हो और इस सिलसिले में यह बात भी निगाह में रहे कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और खुलफ़ा-ए-राशिदीन ने इस्लाम के सुनहरे दौर में अह्ले-किताब से किस तरह जिज़या लिया था।

हम देखते हैं कि इस्लाम ने अह्ले-किताब के अक़ीदे, उनके माल और उनकी इबादतगाहों के एहतिराम की कितनी ताकीद की है। उसी तरह उन्हें किसी भी प्रकार से दुख पहुँचाने से मना किया गया है, चाहे वह ज़बान की हद तक ही क्यों न हो। जिस तरह किसी मुसलमान की ग़ीबत करने से रोका गया है उसी तरह अह्ले-किताब की ग़ीबत से भी रोका गया है।

इस सिलसिले में जब हम इस्लामी इतिहास का अध्ययन करते हैं तो हमें अह्ले-किताब से जिज़या वुसूल करने के मामले में न अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ओर से और न ही खुलफ़ा-ए-राशिदीन की ओर से कोई एक ऐसी घटना मिलती है कि अह्ले-किताब के साथ कोई ऐसा सुलूक किया गया हो जिसे ज़िल्लत और रुसवाई कहा जा सके। अह्ले-किताब से कभी इस तरह से जिज़या नहीं लिया गया जिससे उनके साथ किसी तरह की बदसुलूकी या नफ़रत का इज़हार होता हो।

इस्लाम ने तो अह्ले-किताब को दुख पहुँचाने से मना किया है, यहाँ तक कि उनकी ग़ीबत करना भी मना है (तो भला उनको रुसवा करना कैसे

जाइज़ हो सकता है)। चूँकि अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने ही हमारे लिए क़ानून बनाए हैं, इसलिए आप (सल्ल०) का उसवा (आदर्श) ही हमारे लिए अनुसरणीय है। खुलफ़ा-ए-राशिदीन नबी (सल्ल०) की सोहबत में सबसे ज़्यादा क़रीब रहे हैं और शरीअत को सबसे ज़्यादा मज़बूती से पकड़ने वाले थे। लेकिन उनके मुताल्लिक़ ज़िम्मियों से नफ़रत और हिक़ारत की एक भी घटना नहीं मिलती है।

इसलिए ज़रूरी है कि जिज़या के बारे में आई इस आयत को हम उस तरह न समझें जिस तरह कुछ लोगों ने उसे समझा है।

हम अल्लाह तआला के क़ौल में 'यद' का अर्थ सामर्थ्य और ताक़त से लेते हैं। हमें क़ुरआनी नसीहतों और अरबी भाषा और साहित्य में ऐसी बहुत-सी मिसालें मिलती हैं जो इस मतलब का समर्थन करती हैं। ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) के दौर में नातिफ़ पादरी के साथ जो समझौता हुआ था उसमें भी कहा गया था, 'अला कुल्लि ज़ी यदिन', जिसका मतलब है प्रत्येक सामर्थ्यवान व्यक्ति पर। यानी जिज़या केवल उन लोगों पर लागू होगा जो उसका सामर्थ्य रखते हैं। इसी बुनियाद पर छोटे बच्चों, ग़रीबों, मुहताजों, फ़क़ीरों, राहिबों और महिलाओं को इससे छूट दी गई थी।

'वहुम साग़िरून' का मतलब यहाँ खुद सिपुर्दगी और ताबेदारी है। शब्दकोश में भी 'खुज़ूअ' का अर्थ झुकना और ताबेदारी करना है। 'सग़ीर' उस बच्चे को कहते हैं जो अपने माता-पिता और अपने से बड़े की इताअत के लिए झुका रहता है। यानी ज़िम्मियों की ओर से जिज़या अदा करने का मतलब इस्लामी रियासत से वफ़ादारी और ताल्लुक़ का इज़हार है। इसके बदले रियासत उनके जान व माल की हिफ़ाज़त, और उनके मज़हबी अक़ीदे का एहतिराम करती है।

अक़ीदे अलग होने के बावजूद सारे नागरिकों को इस्लाम की सत्ता और उसके क़ानून को क़बूल करने और उसपर अमल करने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा। उपरोक्त आयत की यही व्याख्या क़ुरआनी नसीहतों और शरीअत के उसूलों और इस्लाम के सुनहरे दौर की ऐतिहासिक घटनाओं से

मेल खाती हैं।

यह सच है कि इस्लामी हुकूमत के कुछ दौर में, विशेषकर उसमानी शासनकाल के आख़िरी दौर में जिज़या कुछ इस तरह लिया जाता था कि उसमें ज़िल्लत और हिक़ारत भी शामिल होती थी। तो इसे इस्लाम के ख़िलाफ़ हुज्जत नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि इस्लाम में क़ानून बनाने के कुछ उसूल हैं जो क़ुरआन, सुन्नते-रसूल (सल्ल०) और इजमा (उलमा की सर्वसहमति) से तय होते हैं। मुसलमानों में से किसी एक व्यक्ति का कोई अमल, चाहे वह किसी हैसियत और पद पर हो, इस्लाम के ख़िलाफ़ दलील नहीं बन सकता। लेकिन हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का अमल दलील बन सकता है।

रहा सहाबियों का अमल जो नबी (सल्ल०) के शागिर्द और रफ़ीक़ हैं और लोगों में सबसे ज़्यादा शरीअत के मक़सद पर अमल करनेवाले हैं, उनके बारे में उलमा इस बात पर सहमत हैं कि उनका अमल उसी वक़्त हुज्जत बनेगा जब वह इस्लामी शरीअत के हुक्म के मुताबिक़ होगा। यहाँ यह बात भी ध्यान देने की है कि इस्लामी हुकूमत के आख़िरी दौर में मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों के बीच अनेक कारणों से ताल्लुक़ात ख़राब हो गए थे।

अब ऐसे ख़राब माहौल में जिसमें ग़ैर-मुस्लिमों के साथ ताल्लुक़ात अच्छे न रहे हों, कभी-कभी कोई हाकिम इन उसूलों से हटकर प्रतिशोध की भावना से ग्रसित हो सकता है। यह भी संभव है कि कोई फ़क़ीह ग़लती कर बैठे और कोई ऐसी बात तय कर दे जो इस्लामी शरीअत की रूह और उसके आम उसूलों के ख़िलाफ़ हो। यदि ऐसा कुछ हो तो इस तरह के मामलों में सारा क़ुसूर उस हाकिम या जाहिल मुफ़्ती का होगा।

इस्लाम की अज़ीम शिक्षाएँ इससे बिलकुल बरी हैं। वे हक़ की बुनियाद पर और हर तरह की ख़राबियों से पाक हैं। बड़े-से-बड़ा पक्षपाती भी आज तक उनमें कोई ऐब या कमी नहीं निकाल सका।

यह अम्न और जंग दोनों हालतों में इस्लामी शासन-व्यवस्था का ख़ुलासा है और जिज़या के बारे में जो कुछ कहा गया है यही इस अध्याय

में निर्णायक (फ़ैसलाकुन) है। इस्लाम ने जिज़या के मामले में अख़लाक़, रवादारी और शराफ़त की शानदार मिसालें क़ायम की हैं।

बीसवीं शताब्दी में पश्चिमी साम्राज्यवाद के शिकंजे में फँसी क़ौमों को अपनी जान व माल की हिफ़ाज़त, अपने अक़ीदों की ज़मानत, और अपने अधिकारों की सुहूलत उस दर्जा हासिल नहीं है जितनी कि चौदह सौ साल पहले इस्लामी रियासत में पराजित क़ौमों को हासिल थी।

इस्लामी जंगों की सही तसवीर

इस्लाम ने अपने क़ानून में इनसानियत की ख़ैरख़ाही, हमदर्दी और अम्न व शान्ति के क़ियाम के उल्लेख पर ही बस नहीं किया है, बल्कि इतिहास गवाह है कि इस्लाम ने अपने सुनहरे दौर में ऐसा करके भी दिखाया है। इनसानियत को अम्न व शान्ति का पाठ पढ़ानेवाले दूसरे धर्मों व नज़रियों और इस्लाम में यही बुनियादी अन्तर है।

ऐसे अनेक नज़रियों का अध्ययन किया जा सकता है जो अपने क़ानूनों, दर्शनों और लिट्रेचरों में लोगों के साथ नेकी, ख़ैरख़ाही और हमदर्दी का एलान तो करते रहते हैं, लेकिन जब सत्ता में आते हैं तो सब कुछ भूल जाते हैं और ऐसे बदल जाते हैं कि उन्हें क़ौमों के अधिकारों के साथ मज़ाक़ उड़ाने और उन्हें सख़्ती से कुचलने में तनिक भी हिचक नहीं होती।

यही नहीं, बल्कि वे तो क़ौमों के साथ इन्तिहाई भयानक क़िस्म का मज़ाक़ करते हैं और बेदर्दी से उनके ख़ून बहाते हैं और उनके बीच युद्ध करवाते हैं। इस सिलसिले में आधुनिक युग की क़रीबतरीन मिसाल, फ्रांसीसी इन्क़िलाब के उसूलों और फ्रांस के अधीनस्त देशों के नागरिकों के साथ फ्रांसीसियों की ज़ालिमाना कार्रवाइयों के बीच का वाज़ेह फ़र्क़ है।

फ्रांस ने उत्तरी अफ़्रीक़ा के जिन अरब देशों पर हुकूमत की, वहाँ के लोग आज भी तरह-तरह के ज़ुल्म व अत्याचार के शिकार हैं। उसी तरह की बातें विकसित देशों में भी देखी जा सकती हैं कि उन्होंने ही संयुक्त राष्ट्र के अन्दर मानवाधिकारों की क़ानूनी हैसियत का एलान किया है और फिर वही देश आज मानवाधिकार का हनन करने में सबसे आगे हैं। उन्होंने ही इनसान की आज़ादियों पर डाके डाले हैं, उनके राष्ट्रीय सम्मान को धूमिल किया है और उनकी ज़मीन और उनके संसाधनों पर नाजाइज़ क़ब्ज़ा जमा रखा है। इसकी ज़िन्दा और ताज़ा मिसाल इराक़, अफ़ग़ानिस्तान और सोमालिया में अमेरिका और नाटो की सैनिक कार्रवाइयाँ हैं। उनकी सेना ने

उन देशों में जो भयानक और अमानवीय कार्रवाइयाँ की हैं, वे मानव-इतिहास के काले अध्याय हैं। इस तरह उनके अम्न व शान्ति और सामूहिक न्याय के पक्ष (स्टेंड) में और इनसानों के साथ उनके बरताव व ऐतिहासिक घटनाओं में, जो ज़ुल्म व ज़्यादती और ग़ुलाम बनाने की घटनाओं से भरी हुई हैं, उनमें बहुत अन्तर है। उनका नज़रिया उनके आमाल से बिलकुल मेल नहीं खाता।

रहा इस्लाम तो जो व्यक्ति भी इसकी जंग के बारे में इतिहास का न्याय के साथ एकाग्रचित होकर अध्ययन करेगा तो वह बिना किसी शक व सन्देह के इस नतीजे पर ज़रूर पहुँचेगा कि उसकी जंगें निम्नलिखित विशेषताओं की बुनियाद पर मानवीय इतिहास में अपनी एक अलग पहचान बनाती हैं–

(1) चूँकि इस्लामी जंगें ज़ालिमों के ज़ुल्म व ज़्यादती को रोकने के लिए या दुश्मनों की तरफ़ से होनेवाली पीड़ादायक कार्रवाइयों को रोकने के लिए या मुस्लिम उम्मत के नेतृत्व की रक्षा के लिए उन दुश्मनों के ख़िलाफ़ लड़ी जाती थीं जिन्होंने उम्मत के ख़िलाफ़ मोर्चा खोल रखा था। इसलिए इन जंगों को रक्षात्मक युद्ध कहा जा सकता है और अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की ये सुरक्षात्मक जंगें जिनका उद्देश्य उस दीनी या मज़हबी आज़ादी को हासिल करना था जो अरब के मुशरिकीन नए ईमान लानेवाले मोमिनों को देने के लिए तैयार नहीं थे।

फिर उसके बाद इतिहास में मुर्तदीन (इस्लाम से बग़ावत) के ख़िलाफ़ जंगों का उल्लेख मिलता है। ग़ौर से देखें तो ये जंगें भी वास्तव में इस्लामी हुकूमत के वुजूद को बचाने और उसके अस्तित्व को बचाए रखने के लिए लड़ी गई थीं। क्योंकि मुर्तदीन पूरी तरह इस्लामी रियासत के ख़िलाफ़ बग़ावत पर आमादा थे और उसे पूरी तरह मिटा देना चाहते थे। उसके बाद फ़ारिस और रूम के साथ युद्ध का उल्लेख मिलता है।

रूमवालों के साथ हमारी जंग हक़ीक़त में उनकी उन साज़िशों और छेड़ख़ानियों का जवाब थी जो वे इस्लाम और उसके माननेवालों के ख़िलाफ़ रात-दिन कर रहे थे। यहाँ तक कि उन्होंने सीरिया के सीमावर्ती क्षेत्रों और

हिजाज़ के अरब क़बीलों से मिलकर इस्लामी रियासत के ख़िलाफ़ लड़ाई भी कर रहे थे।

फ़ारिसवालों के साथ भी हमारी जंग इस्लामी रियासत के वुजूद की हिफ़ाज़त के लिए थी और उसका मक़सद उन शरअंगेज़ियों को नाकाम बनाना था जो वे मुर्तदीन का सहयोग व समर्थन करके और उनको माली और जंगी मदद देकर इस्लामी रियासत में अफ़रातफ़री फैलाना चाहते थे और मुर्तदीन में से जो लोग इस्लामी फ़ौज से फ़रार होकर इराक़ के इलाक़े में पहुँचे उनकी वे भरपूर मदद एवं सहयोग किया करते थे।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों और मुशरिकों के साथ जो जंग की थी और आप (सल्ल॰) के बाद मुसलमानों ने जो रूम और फ़ारिस के साथ जंग की थी, वे सभी जंगें रक्षात्मक थीं और ज़ुल्म व अत्याचार की बुनियाद पर नहीं की गई थीं और बाज़नतीनी और फ़ारिसी साम्राज्य के इलाक़ों में जो जंगें हुईं वे वास्तव में पिछली जंगों का ही सिलसिला था, जिनके रोकने का कोई तरीक़ा न था।

(2) इस्लामी जंगें वास्तव में आज़ादी हासिल करने के लिए थीं, जिनका मक़सद क़ौमों को उनके ज़ालिम और सरकश बादशाहों से आज़ादी दिलाना था और उन्हें इस बदतरीन मज़हबी और इजतिमाई सूरतेहाल से छुटकारा दिलाना था जिसमें वे अपने शासकों और रईसों के कारण घिर गए थे। अतएव इस्लामी जंगों ने क़ौमों के मामलों में बादशाहों की हुक्मरानी को पूरी तरह ख़त्म कर दिया और उनकी वह सोच भी ख़त्म हो गई जिसके नतीजे में वे जब चाहते क़ौम को जंग की आग में झोंक देते थे। इसमें न तो क़ौम का कोई लाभ होता था और न इस सिलसिले में उनसे कोई राय ली जाती थी।

और उन अधिकारों की भी समाप्ति हो गई जो बादशाहों और रईसों ने अपने लिए तय कर रखे थे कि उनकी मरज़ी ही अल्लाह की मरज़ी है और उनकी पैरवी ही अल्लाह की पैरवी है।

अतएव हमने देखा कि एक समय वह भी आया कि क़ौम अपने

शासकों और रईसों को इस नज़र से देखने लगी कि वे उसके सेवक हैं और उसके कामों को पूरा करने के ज़िम्मेदार हैं।

एक बार अबू-मुस्लिम ख़ौलानी हज़रत अमीर मुआविया (रज़ि॰) के पास आए और कहा, "ऐ मज़दूर! अस्सलामु अलैकुम", दरबार में मौजूद लोगों ने कहा, "कहो, ऐ अमीर।" उन्होंने दोबारा कहा, "ऐ मज़दूर! अस्सलामु अलैकुम।" फिर लोगों ने कहा, "कहो, ऐ अमीर।" इस तरह लोगों ने हर बार अमीर कहने के लिए कहा, मगर वे हर बार 'ऐ मज़दूर!' दोहराते रहे। यहाँ तक कि हज़रत अमीर मुआविया (रज़ि॰) ने लोगों से कहा, "अबू-मुस्लिम को छोड़ो, वे अच्छी तरह जानते हैं कि वे क्या कह रहे हैं।"

अबू-मुस्लिम ने कहा, "ऐ मुआविया! तुम तो मज़दूर हो इन भेड़ों (अभिप्रेत आम जनता) के मालिक ने तुम्हें मज़दूरी पर रखा है। अब यदि तुमने अच्छी तरह से उनकी देख-रेख की और इनमें से हरेक का ख़याल रखा तो इनका मालिक तुम्हें पूरा-पूरा बदला देगा और अगर तुमने अपनी ज़िम्मेदारी पूरी नहीं की तो इनका मालिक तुम्हें सज़ा देगा।"

इसी तरह हम देखते हैं कि लोगों के अन्दर विचार अभिव्यक्ति की ऐसी ताक़त पैदा हो गई कि एक आदमी जन-सभा में हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) को सम्बोधित करते हुए कहता है, "अल्लाह की क़सम! यदि हमने आपके अन्दर कोई टेढ़ देखी तो अपनी तलवारों से आपको सीधा कर देंगे।"

इसी तरह एक ग़रीब आदमी हज़रत उमर (रज़ि॰) से कहता है, "हम आपकी बात न सुनेंगे और न मानेंगे।" जब उसने आपके शरीर पर एक कपड़ा देखा और उसे आभास हुआ कि यह बैतुल-माल से बनाया गया होगा। इन दोनों के ताल्लुक़ से हज़रत उमर (रज़ि॰) का पक्ष यह था कि पहले व्यक्ति से वे नाराज़ नहीं हुए और न अपने-आपको कपड़े पर आरोप से ऊपर समझते हुए उस ग़रीब आदमी को तुच्छ समझकर छोड़ दिया, बल्कि उनके बेटे अब्दुल्लाह ने इस आरोप को दूर किया।

इन दोनों घटनाओं में क़ौमों के अन्दर पैदा होनेवाली नई रूह (स्प्रिट) का पता चलता है और विचार अभिव्यक्ति की यह आज़ादी वास्तव में

इस्लामी जंगों की पैदा की हुई हैं। इस्लामी शिक्षाएँ बातिल नज़रियों पर ग़ालिब आईं और उसके नतीजे में मिसाली अवामी हुकूमत क़ायम हुई। विचारों की अभिव्यक्ति की वजह से हुकूमत में स्थायित्व आया और क़ौमों के मिज़ाज और जन-मानस से क़रीबी रिश्ता भी क़ायम हुआ।

क़ौमों की आज़ादी की शानदार मिसाल हमें एक क़िबती के साथ घटी उस घटना में मिलती है जिसमें मिस्र के हाकिम हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि०) के बेटे ने क़िबती के बेटे की पिटाई कर दी थी। उसने इस बात की शिकायत अमीरुल-मोमिनीन हज़रत उमर (रज़ि०) से की।

यह एक ऐसी मिसाल है जिसकी नज़ीर हमें इस्लाम से पहले कहीं नहीं मिलती है। मुसलमानों के मिस्र को फ़त्ह करने से पहले भी वह क़िबती एक महकूम क़ौम से ताल्लुक़ रखता था, जिस पर रूमी ग़ालिब थे। रूमियों ने क़िबती क़ौम को पराजित करके, उसके मान-सम्मान को कुचलकर रख दिया था। वे क़िबतियों के माल-जायदाद छीन लेते थे और उनके मर्दों और औरतों की पीठों को कोड़ों से मार-मारकर लहुलूहान कर देते थे।

वे उनकी मज़हबी आज़ादी और चर्च के मामलों में भी अनुचित हस्तक्षेप किया करते थे। इस परिस्थिति में कोई क़िबती न तो रूमियों के ज़ुल्म व ज़्यादती के ख़िलाफ़ कोई आवाज़ उठा सकता था और न किसी तरह की बेचैनी का इज़हार करता था।

जब इस्लाम मिस्र में दाख़िल हुआ तो उसने मिस्री क़ौम के शुऊर को जगा दिया। उसी का नतीजा था कि जब एक छोटे बच्चे ने जो कि हाकिम का बेटा था एक दूसरे छोटे बच्चे को मारा जो कि पराजित क़ौम (क़िबती) का बेटा था। उसके बाप ने इसे ज़ुल्म समझा। उसके बाप को उस ज़ुल्म पर ख़ामोश रहना गवारा न हुआ और शिकायत करने के लिए पूरे एक महीने ऊँट पर सफर तय करके मुसलमानों के ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि०) के पास पहुँचा और माँग की कि इस ज़ुल्म को ख़त्म किया जाए जिसकी समाप्ति के लिए और दुनिया-भर की क़ौमों को इससे निजात दिलाने के लिए इस्लामी जंगों की शुरुआत हुई थी।

उस क़िबती की उम्मीद के मुताबिक़ हज़रत उमर (रज़ि॰) उसकी शिकायत सुनकर बेचैन हो गए और मिस्र के हाकिम और उसके बेटे को तुरन्त मदीना में अमीरुल-मोमिनीन की अदालत में पेश होने का आदेश जारी किया। दोनों के ख़िलाफ़ मुक़दमा क़ायम हुआ और सुनवाई के बाद यह फ़ैसला सुनाया कि हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) के बेटे को क़िबती का लड़का उसके सिर पर ज़ोर की मार लगाए और यह बदला वह पूरी जन-सभा के सामने लेगा।

फिर अमीरुल-मोमिनीन हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उसी पर बस नहीं किया बल्कि हुक्म दिया कि कोड़ा हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) के सिर पर रखा जाए और उन्हें फिटकारते हुए कहा–

> ''तुमने लोगों को कब ग़ुलाम बना लिया। उनकी माँओं ने तो उन्हें आज़ाद जना था।''

यदि सरसरी नज़र से देखा जाए तो एक छोटे बच्चे का अपनी ही उम्र के एक दूसरे बच्चे को मार बैठना कोई अजीब बात न थी। इस तरह की घटनाएँ तो हर जगह हर रोज़ होती रहती हैं। केवल हाकिम और महकूम के बच्चों के बीच नहीं, बल्कि पड़ोसियों के लड़कों में, एक ही घर के सगे भाइयों में इस तरह की मार-पीट होती रहती है।

लेकिन किसी के दिल में यह ख़याल नहीं आता कि यह एक ऐसा मामला है जिसे अमीरुल-मोमिनीन ख़ुद अहमियत देंगे और मारनेवाले लड़के और उसके बाप को जन-सभा में सज़ा दिलवाई जाएगी।

मगर इस्लाम में ऐसा हुआ, क्योंकि इस्लाम क़ौमों को हर तरह की ज़ुल्म व ज़्यादती और ग़ुलामी से आज़ादी दिलाता है। इस्लाम की नज़र में किसी हाकिम के लड़के का अपने बाप की सत्ता और हुक्मरानी के नशे में महकूम क़ौम के किसी लड़के को मारना और यह कहना कि 'मैं शरीफ़ज़ादा हूँ' एक तरह की ग़ुलामी है।

एक लड़के का किसी दूसरे लड़के को नाहक़ मारना इस्लाम की निगाह में खुला हुआ ज़ुल्म है और किसी को ज़बरदस्ती ग़ुलाम बनाना है। क्या

क़ौमों के लिए इससे ज़्यादा किसी आज़ादी की कल्पना मुमकिन है। क्या क़ौमों के आत्म-सम्मान की रक्षा और उनकी आज़ादी के हक़ की छूट इससे ज़्यादा और इससे बढ़कर हो सकती है?

इसकी तुलना में दूसरे धर्मों व नज़रियों को माननेवाले एक पूरी क़ौम पर ज़ुल्म ढाते हैं और उसे अपनी सरज़मीन से निकाल बाहर करते हैं और उसे बेघर कर देते हैं, ताकि भूख, बीमारी और ठंडक के कारण पूरी क़ौम मर जाए। ब्रिटेन और अमेरिका समेत अधिकांश बड़े-बड़े देशों ने मिलकर फ़लस्तीनी क़ौम के साथ जिस ज़ुल्म व ज़्यादती का प्रदर्शन करके उसे अपनी सरज़मीन से पलायन करने पर मजबूर किया और फिर वहाँ यहूदियों को ला बसाया, यह हम सबके इल्म में है। और आज इसराईली हुकूमत ग़ज़ावालों के साथ जिस तरह की बरबरता दिखा रही है वह इतिहास का कलंक है। पहले भी फ़लस्तीनियों के साथ यही कुछ इसराईल के पूर्व प्रधानमंत्री ने किया था।

निस्सन्देह हज़रत उमर (रज़ि॰) ने क़िबती लड़के को हक़ दिलवाने के लिए जो कुछ किया वह एक मिसाली क़दम था। इतिहास की नज़र में हज़रत उमर (रज़ि॰) का यह अमल इनसानी नस्ल पर एक बहुत बड़ा एहसान है।

और क़िबती ने जो क़दम उठाया वह नतीजा है इस्लामी जंगों का जो वह क़ौमों के अन्दर ज़ुल्म से आज़ादी के लिए पैदा करती है। जब हम इस्लामी जंगों का मुक़ाबला उन जंगों से करते हैं जो शुरू तो की जाती हैं क़ौमों को आज़ादी दिलाने और कमज़ोरों को सत्ता तक पहुँचाने के लिए, तो हमें इस्लामी जंगें इनसानियत पर बहुत ज़्यादा रहम करनेवाली नज़र आती हैं।

इसके विपरीत दूसरी जंगें इनसानियत और उसके संसाधनों को रौंद डालती हैं और उनके ज़रिए से क़ौमों को आज़ादी मिलने के बजाय वे और ज़्यादा ज़ुल्म का शिकार हो जाती हैं। उनके देशों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाता है और उनकी क़ौमी प्रतिष्ठा और उनके संसाधनों को छीन लिया जाता है, जैसा कि दोनों विश्व युद्धों में हुआ।

(3) इस्लामी जंगें वास्तव में नैतिक मूल्यों पर आधारित थीं। इन जंगों में हारी हुई क़ौमों के साथ मामला करने में हमेशा हक़ और इनसाफ़ और रहम व करम की पाबन्दी की गई। यहाँ तक कि हुक्मरानी के ज़माने में भी उनके साथ इसी तरह का मामला किया गया। हम पूरे इनसानी इतिहास को पढ़ते हैं, मगर उसमें इस तरह की कोई घटना नहीं पाते जिसका ज़िक्र नीचे किया जा रहा है–

जब हज़रत उमर-बिन-अब्दुल-अज़ीज़ (रह०) ख़लीफ़ा बने तो समरक़न्द के कुछ लोग उनके पास आए। उन्होंने उनके सामने अपना मुक़दमा पेश करते हुए कहा–

> "क़ुतैबा (जो कि एक सिपहसालार हैं) हमारे शहर में दाख़िल हुए और धोखे से बग़ैर किसी हक़ के मुसलमानों को शहर में बसा दिया।"

यह सुनकर हज़रत उमर-बिन-अब्दुल-अज़ीज़ (रह०) ने अपने गवर्नर को ख़त लिखा कि उनके लिए एक क़ाज़ी (जज) मनोनीत किया जाए, जो उनके मामले को देखे और यदि क़ाज़ी मुसलमानों को उनके शहर से निकालने का फ़ैसला करे, तो उन्हें निकाल दो।

अतएव गवर्नर ने उनके लिए 'जमीअ्-बिन-हाज़िर अल-बाजी' को उनकी शिकायत पर ग़ौर करने के लिए क़ाज़ी मनोनीत किया, और क़ाज़ी ने मुसलमानों को उनकी सरज़मीन से निकाल बाहर करने का फ़ैसला सुनाया।

इस्लामी लशकर के कमांडर को हुक्म दिया कि वे इस्लाम में जंग के उसूलों के मुताबिक़ पहले समरक़न्दवालों को ख़बरदार करे, फिर उनके साथ जंग का एलान करे। यहाँ तक कि समरक़न्दवाले जंग के लिए पूरी तरह से तैयार हो जाएँ। उनपर एकाएक हमला नहीं किया जाएगा।

लेकिन क़ाज़ी के इस फ़ैसले के बाद समरक़न्दवालों ने मुसलमानों से जंग को नापसन्द किया और युद्ध के बग़ैर ही अपनी सरज़मीन पर मुसलमानों के हक़ को स्वीकार लिया और उन्हें अपने यहाँ आबाद किया। (बिलाज़री)

यह इतिहास की एक अनोखी और आश्चर्यजनक घटना है कि एक विजयी सेना किसी शहर में दाख़िल होती है और शहर का क़ाज़ी (यानी जज) उसको शहर से निकल जाने का आदेश देता है, क्योंकि वह शहर में अनाधिकृत तरीक़े से दाख़िल हुई है और सेना उस आदेश को स्वीकार कर लेती है और शहर छोड़ देती है और शहर में दोबारा उस समय दाख़िल होती है जब शहर के लोग ख़ुद सेना को दाख़िल होने की इजाज़त देते हैं।

यह इस बात की रौशन दलील है कि इस्लाम की जंगें नैतिक मान्यताओं और हक़ व इनसाफ़ के उसूलों पर लड़ी गई थीं और उसकी पूरी तरह पाबन्द थीं। इस्लाम के अध्ययन से पता चलता है कि पूरी दुनिया में किसी क़ौम व मिल्लत में इस तरह का नज़रिया नहीं मिलता है और न जंगों के इतिहास में किसी जंग में ऐसी शानदार मिसाल मिलती है।

(4) इस्लामी जंगों की बुनियाद पूरी तरह इनसानियत पर थी। ये जंगें किसी क़ौम, गरोह और जिंस के हित में नहीं लड़ी गई थीं, बल्कि दुनिया की सारी क़ौमों के हित के लिए थीं। विजय प्राप्त करने के बाद उसने अपना सीना सारी दुनिया की क़ौमों के लिए खोल दिया और उसने दुनिया की सभी सभ्यताओं से लाभ उठाया। इस्लाम ने अपने झंडे के नीचे बहुत सी क़ौमों और गरोहों को साया दिया, जिनकी ज़बानें और रस्म व रिवाज अलग-अलग थे और उनकी नस्लें और धर्म भी भिन्न थे। यह इस्लामी जंगों की ही विशेषता है कि विजय मिलने और वर्चस्व प्राप्त करने के बाद उसने एक ऐसी सभ्यता की बुनियाद रखी कि जिसके निर्माण और विकास में इस्लाम के अधीन सारी क़ौमों ने मिल-जुलकर भूमिका निभाई। यदि इस्लाम की जंगें और उसका विजय अभियान न चलता तो क्या इनसानियत इस्लाम की महान शख़सियतों, मिसाल के तौर पर इमाम अबू-हनीफ़ा, इब्ने-सीना, फ़ाराबी और इमाम ग़ज़ाली की असाधारण सोच से फ़ायदा उठा सकती थी। दिलचस्प बात यह है कि ये सभी ग़ैर-अरबी थे।

इस्लामी जंगों की यही अहम विशेषताएँ हैं जो हमें उसकी ऐतिहासिक घटनाओं में नज़र आती हैं। इस तरह इस्लाम ने इनसानी इतिहास में पहली बार एक ऐसी मुमताज़ और बेहतरीन नस्ल तैयार की जो न केवल

शान्ति-प्रिय थी, बल्कि उसने व्यावहारिक रूप में दुनिया में अम्न व शान्ति की बुनियाद पर निज़ाम क़ायम किया और जंग को नापसन्द किया और उससे दूर रहने की कोशिश की। उसने जंग में हिस्सा उसी वक़्त लिया जब उसके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं था और जब जंग की तो अपनी नैतिकता, मानवीयता और शान्ति-प्रिय आत्मा को कभी नहीं भुलाया। ऐसे मौक़े पर उसने अपने कट्टर-से-कट्टर दुश्मनों के साथ भी रवादारी का मामला किया और इस सिलसिले में इस्लाम ने बेमिसाल कामयाबी हासिल की।

और इस कामयाबी का राज़ यह है कि इस्लाम ने मुसलमानों के लिए अम्न का माहौल पैदा किया। एक मुसलमान के अपने अन्दर, अपने घर में, अपने पड़ोस में और अपने समाज में हर तरफ़ अम्न-ही-अम्न था। इस्लाम ने उनके अन्दर से शर, लालच, वर्चस्व की भूख और उच्च होने के विचार को निकाल बाहर किया था।

उसने मुसलमानों के लिए इबादत को वह पहला मदरसा बना दिया जो उन्हें लोगों के साथ सहयोग और अम्नपसन्दी का प्रशिक्षण देता है। जब अक़ीदे और इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त के लिए और जमाअत को ज़ालिमों की सरकशी और घमंडियों के ज़ुल्म व ज़्यादती से आज़ादी दिलाने के लिए मुसलमानों को जंग के लिए मजबूर होना पड़ा तो उन्होंने ऐसी बेजिगरी से दुश्मनों का मुक़ाबला किया कि लोगों ने देखा कि वे शेर हैं जो मौत की परवाह नहीं करते और अपने शरीर पर लगनेवाले ज़ख़्मों से भी बेपरवाह होते हैं।

लेकिन इसके बावजूद वे संधि के लिए बेचैन रहते हैं और अम्न व शान्ति को क़ायम करने के लिए हमेशा गंभीर रहते हैं और उनका सीना हसद की भावनाओं से ख़ाली होता है।

यदि हम विचार करें तो आज इनसानियत को उस प्रशिक्षण की कितनी ज़्यादा ज़रूरत है जिसकी बुनियाद पर इस्लाम के अपने माननेवालों को प्रशिक्षित किया। इस्लाम ने उन्हें इनसानी नस्ल का सच्चा सेवक बना दिया

था। आज जो लोग दुनियाभर में अम्न क़ायम करने का नारा लगा रहे हैं, उनका यह नारा खोखला साबित हो रहा है। उसकी बड़ी वजह यह है कि वे अम्न की लज़्ज़त से अनभिज्ञ (नाआशना) हैं। स्वयं उनके अन्दर फ़साद-ही-फ़साद है। उनके घरों और उनके समाज में शान्ति का पूर्ण अभाव है। उनके दिलों में लालच और काम-वासनाओं के बीच संघर्ष जारी है। उनके दिल व दिमाग़ के बीच जंग जारी है। उनके घरों में आपसी मतभेद की एक ऐसी आग भड़क रही है जिसके कारण अधिकारों एवं कर्तव्यों का सन्तुलन बिगड़ गया है। पति और पत्नी के बीच, बाप और बेटे के बीच अधिकारों एवं कर्तव्यों की जंग जारी है।

उनके समाज में विरासत को लेकर खींच-तान और झगड़े, सामाजिक ज़ुल्म व ज़्यादती आदि अनेक ऐसे कारक हैं जो स्थायी रूप से तनाव पैदा कर रहे हैं और दुश्मनी को हवा दे रहे हैं। इस तरह वे लोग किसी जंग में जाने से पहले ख़ुद एक लगातार चलनेवाली जंग में घिरे हुए हैं। उनके पास अम्न के दूर-दूर तक कोई आसार नहीं दिखते तो वे दूसरों को अम्न व सलामती की दावत किस बुनियाद पर दे रहे हैं!

कहने को वे अम्न व शान्ति की दावत दे रहे हैं, लेकिन हक़ीक़त यह है कि वे विभिन्न देशों और क़ौमों के बीच दुश्मनी को हवा दे रहे हैं। वे इज़्ज़त व आबरू को पामाल कर रहे हैं। वे क़ौमों के माल-दौलत को हड़प कर जाने के लिए और उनकी संप्रभुता को छीनने के लिए ख़ुद एक-दूसरे से झगड़ रहे हैं। इस तरह यद्यपि वे अपने-आपको बड़ा अम्नपसन्द और सुलह चाहनेवाला ज़ाहिर करते हैं, लेकिन उनका अमल हमेशा ही जंग चाहनेवाला जैसा होता है।

इस बात में शक की कोई गुंजाइश नहीं है कि जिसका अन्दुरून अम्न के सच्चे एहसास से ख़ाली हो और जिसका समाज ख़ुद बदअमनी का शिकार हो, और जिसके देश में ख़ुद अम्न नाम की कोई चीज़ न हो वह दूसरे देशों और दूसरी क़ौमों को अम्न कैसे दे सकता है!

यदि बड़ी क़ौमों के रहनुमा आज अपने अन्दुरून और अपने देशों के

ज़हरीले साम्प्रदायिक माहौल में ज़िन्दगी नहीं गुज़ार रहे होते तो ज़रूर दुनिया को बीते वक़्त के दोनों विश्व युद्धों के खतरे से बचाने में सामर्थ्य होते और तीसरे विश्व युद्ध का खतरा जिसकी आशंका जताई जा रही है उसके आसार आसानी से ख़त्म कर देते।

यहाँ सवाल यह उठता है कि क्या दुनिया के राजनीतिज्ञ, नीति निर्धारित करनेवाले और दुनिया-भर में सुधार के ठेकेदार किसी ऐसी शासन-व्यवस्था की तलाश में हैं जो अम्न व शान्ति की ओर उनकी रहनुमाई करे और उनकी क़ौमों और पूरी दुनिया को जंग की तबाहकारियों से बचा सके?

क्या वे इस्लाम जैसे व्यवहारिक क़ानूनी शासन-व्यवस्था के बारे में पता नहीं लगाते जो मानव-स्वभाव को अम्न व शान्ति से भर देता है। जो उस अल्लाह की बन्दगी करते हैं जो सरापा मेहरबान और अम्न व शान्ति का सरचश्मा है और उनके बीच रहमत व सलामती को मुलाक़ात के समय की दुआ बनाया है और उन पाकीज़ा लोगों को जन्नत के जिस जगह पर रखा जाएगा उसका नाम 'दारुस्सलाम' यानी 'सलामती का घर' होगा।

क्या दुनिया में अम्न क़ायम करने का दावा करने और शोर मचानेवालों के लिए इस बात का मौक़ा नहीं है कि हर साल हज के मौसम में आयोजित होनेवाले उस विश्व शान्ति-सम्मेलन को देखें जिसका आयोजन ख़ालिस अल्लाह के लिए होता है और इस सम्मेलन में भाग लेनेवालों का ताल्लुक़ दुनिया के हर भाग से होता है और सब की ज़बान पर सलामती के घर (काबा) में अम्न व शान्ति का गीत होता है। उनके मामलों में नबियों और रसूलों के अख़लाक़ की झलक दिखाई देती है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"न तो कोई काम-वासना, न अवज्ञा और न कोई लड़ाई—झगड़ा।"
(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-197)

ये हैं उस विश्व शान्ति-सम्मेलन की कुछ ख़ास विशेषताएँ। क्या दुनिया में शान्ति क़ायम करने की कोशिश करनेवालों के लिए इस बात का मौक़ा है कि वे उस ईश्वरीय कान्फ्रेंस का अध्ययन करें जो आबाद दुनिया से बहुत

दूर एक जगह पर आयोजित की जाती है और उनमें भाग लेनेवालों का यह हाल होता है कि जैसे उनके दिलों से जंग व जिदाल, फ़ितना व फ़साद और आपसी दुश्मनियों के सभी कारक निकाल लिए जाते हैं।

फिर वे अम्न की ओर बुलानेवाले, हिदायत पानेवाले और सलामती के संदेशवाहक बनकर अपने वतन को लौटते हैं। क्या शान्ति के उन अलम्बरदारों को यह तौफ़ीक़ मिलेगी कि वे अपनी आँखों से अम्न के इस ईश्वरीय विश्व सम्मेलन को ग़ौर से देखें और इस बात को अच्छी तरह समझें कि यह इस्लाम की शक्ति है जिसने लोगों के दिलों में अम्न की मुहब्बत पैदा कर दी है। यहाँ तक कि वे अपने रंग, नस्ल, ज़बान और देश के मतभेदों के बावजूद आपस में भाई-भाई बनकर पाक भावनाओं के साथ अम्न व सहयोग के माहौल में एक-दूसरे से मिल रहे हैं।

बरनार्डशा ने क्या ही ख़ूब कहा है–

"मुहम्मद (सल्ल०) को वास्तविक अर्थों में इनसानियत का मुक्तिदाता कहना चाहिए। यदि आज उनके जैसा कोई आदमी आधुनिक दुनिया के नेतृत्व के पद पर आसीन हो तो इसकी सारी समस्याएँ इस तरह हल हो जाएँगी कि उससे सारी दुनिया में अम्न व अच्छाई का बोलबाला होगा। क्योंकि आज दुनिया को अम्न व अच्छाई ही की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है।"

ऐ अल्लाह! दुनिया को अम्न व सलामती से भर दे, तू सरापा सलामती है और सलामती का सरचशमा है। आपकी ज़ात बड़ी बरकत और अज़मत वाली है।

—:—